तृतीय अध्याय

हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि ---

हिन्दी साहित्य में नाटकीय शिल्पविधि का रूप अनेक प्रकारों में दिखाई देता है। ` अगस्त्य ` नाटक के शिल्पविधान का अध्ययन करने के पहले भारतीय तथा पश्चिमी नाट्य-शिल्प विधान का संक्षेप परिचय देना उचित होगा।

भारतीय नाट्यशिल्प --

भारतीय साहित्य में नाट्य परंपरा बहुत ही प्राचीन है। भारत के आचार्यों ने नाट्य सम्बन्ध में बड़ा गम्भीर विवेचन किया है। नाट्याचार्य भरत मुनि ने ` नाट्यशास्त्र ` में सर्व प्रथम नाटक के शिल्प का सूक्ष्म विवेचन किया है - ` अनुभाव और विभाव संयुक्त रचना काव्य कहलाती है। गीतादि से रंजित होकर नटों द्वारा जब उसका प्रदर्शन होता है। तो उसे नाटक कहते है। ` [१]

` धनंजय के अनुसार ` अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् ` है अर्थात अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते है। ` [२] धनंजय ने एक सूत्र में ` वस्तु नेता रस स्तेषां भेदक: ` कहकर नाटक के वस्तु, नेता और रस ये तीन तत्व स्वीकार करते हैं। भारत के सभी आचार्य इन्हीं तीन तत्वों को ही मानते है। कालिदासने अपने मालविकाग्निमित्र

---

१ भरतमुनि -- नाट्यशास्त्र १३ । ८४ । ८५

२ डॉ. भोलाशंकर व्यास (व्याख्याकार) दशरूपक प्रथम प्रकाश - पृ.४ T

में नाट्य के बारे में बताया है --` त्रैगुण्योद्भावमत्र लोक चरितं नानारसं दृश्यन्ते

` त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ।

अर्थात नाटक सत्व,तम,रज गुणों से युक्त,भिन्न रूचि होनेवाले लोगोंका मनोरंजन करनेवाला साधन है ।`[1]

धनंजय ने रूपक के दस भेद किये है - अर्थात नाटक,प्रकरण,भाण,प्रहसन, डिम,व्यायोग, समवकार,वीथी,अंक,ईहामृग नाम दस भेद हैं । रूपक का प्रमुख भेद नाटक है ।

भरत के नाट्यशास्त्र में ऋग्वेद से पाठ,साम से गीत,यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर पंचम वेद बना, यह लिखा है ।`[2]

इस प्रकार पाठ कथावस्तु,नायक,रस और संगीत इन तत्वों को लेकर संस्कृत नाट्य शिल्प चला ।

धनंजय ने नाट्य का विश्लेषण छह दृष्टियों से किया है । आरंभिक विधान और वृत्ति ,कथावस्तु,पात्र,रस,दृश्य और अंक । नाटक में पांचसे दस तक अंक होने चाहिए । नाटक में शृंगार ,वीर,आदि रसकी प्रधानता होनी चाहिए । ` धनंजय` के अनुसार किसी भी कथावस्तु के दो प्रकार होते हैं -- आधिकारिक और प्रासंगिक[3] कथावस्तु की पाँच अवस्थाएँ होती है । ये है -- प्रारंभ,प्रयत्न, प्राप्त्याशा,नियताप्ति और फलागम । कथावस्तु को प्रधान फल की ओर अग्रेसर करनेवाले चमत्कार पूर्ण अंश को भरतमुनि ने` अर्थ - प्रकृति ` कहा है ।

---

१ डॉ.दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक उद्भव और विकास - पृ.४० ।

२ भरतमुनि - नाट्यशास्त्र - १ । १६ । १७

३ वही वही १६ । ४३ । ५६

अर्थ प्रकृति के भी बीज,बिंदु,प्रताका,प्रकरी और कार्य नामक पाँच भेद हैं। नाटय शरीर की पाँच संधियाँ है -- मुखसंधि, प्रतिमुख संधि,गर्भ संधि,अवमर्श संधि और निर्वहण संधि।`[1]

नाट्य में पात्र का विशेष महत्व है।` पात्र के शील-स्वभाव,आचार विचार, आहार - व्यवहार,आवस्था एवं प्रकृति की विभिन्नता एवं विविधता की पृष्ठभूमि में कथावस्तु परि पल्लवित होती है। बिना पात्र के न तो कथावस्तु में गति आ सकती है और न रस निष्पन्न ही हो सकता है।[2] नायक नाटक का केन्द्रबिन्दु है। नायक - नायिका और अन्य पात्रों के अनंत प्रकार हैं।

भरतमुनि ने सर्व प्रथम रस को शास्त्रीय महत्व दिया है। उन्होंने आठ रस माने हैं -- शृंगार, हास्य,करूण,रौद्र,वीररस,भयानक,बीभत्स,अद्भुत।[3]

साहित्य दर्पणाकार विश्वनाथ नाटक के बारेमें कहा है --` नाटक का कथानक,रामायण,महाभारतादि ग्रंथों से पूर्व परिचित,पंच मुखादी संधियों से युक्त, पाँच से लेकर दस तक अंकोवाला,नायक राजर्षि,पराक्रमी,धीरोदात्त होना चाहिए। उसमें शृंगार ,वीर,प्रधान रस होने चाहिए।`[4]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने संस्कृत नाट्यशैली का गंभीर अध्ययन किया और इसमें जो उन्हें अपने युग के अनुकूल लगा,उसे ग्रहण किया और शेष का परित्याग कर दिया। उन्होंने लिखा है` जिस समय जैसे सहृदय जन्म ग्रहण करें और देशीय रीति-नीति का प्रवाह जिस रूप में चलता रहे,उस समय में उक्त सहृदयगण की वृत्ति और सामाजिक रीति पध्दति इन दोनों विषयों की समालोचना करके नाटकादि - दृश्य काव्य का प्रणयण करना योग्य है।`[5]

---

१ भरतमुनि - नाट्यशास्त्र - १६। ४९-५६

२ वही वही २२। ९७

३ वही वही ६। ३८

४ महादेवशास्त्र जोशी - भारतीय संस्कृति कोश - पृ.७६९।

५ डॉ.देवर्षि सनाढय - हिन्दी के पौराणिक नाटक - पृ.२८१।

भारतेन्दु ने अपने नाटकों में न तो शुध्द भारतीय पध्दति का ही अनुसरण किया और न पाश्चात्य पध्दति का ही । उन्होंने कुछ पारसी नाटक कंपनियों तथा बंगला नाटक के ढंग पर उपयोग किया है । ` नांदी,प्रस्तावना, भरतवाक्य के साथ दृश्य के अर्थ में गर्भांक का प्रयोग किया । पाश्चात्य प्रभाव के अनुसार विषय तथा उद्देश्य नवीन हुए । अंक प्राय: तीन रखे ।`[१]

प्रसाद ने नाट्यकला,शैली शिल्प आदि की दृष्टि से भारतेन्दु शिल्प विधि को विकसित किया । रचना पध्दति की दृष्टि से यद्यपि उन्होंने भारतीय तत्व बनाए रखा तो भी पाश्चात्य,पध्दतिका अनुसरण ही अधिक किया । नाटकों में रस का परिपाक होते हुए भी उद्देश्य पक्ष निर्बल नही है ।`[२]

युनानी आचार्य अरस्तू ने अपने ' काव्यशास्त्र' में नाटक के बारेमें चर्चा की है ।` नाटक काव्य की एक विधा है, उसका विवेचन त्रासदी और कामदी दो प्रकारों में किया हैं । त्रासदी को उन्होंने जीवन की अनुकृति माना है । अरस्तू के शब्दों में त्रासदी किसी गंभीर स्वत:पूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है, जिसका माध्यम नाटक के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न रूप से प्रयुक्त सभी प्रकार के आचरणों से अलंकृत भाषा होती है, जो समाख्यान के रूप में न होकर कार्य व्यापार रूप में होती है और जिसमें करुणा तथा त्रास का उद्रेक हो ।`[३]

अरस्तू तो त्रासदी के वह अनिवार्य अंग माने हैं -- कथानक,चरित्र चित्रण, पद-रचना,विचार तत्व,दृश्य विधान,गीत ।`[४]

---

१ गिरिजा सिंह - हिन्दी नाटकोंकी शिल्पविधि - पृ.१३ ।

२ - वही - - वही - पृ.१६ ।

३ डॉ.नगेन्द्र - अरस्तू के काव्य - सिध्दांत - पृ.६५

४ - वही - वही - पृ.६५-६६ ।

पाश्चात्य नाट्यशिल्प में शेक्सपियर की रोमॅंटिक शैली महत्वपूर्ण है। इस शैली में ट्रेजेडी की भावना, व्यक्तिगत प्रधान नाटक, सुख और दुःख की सीमाएँ, मुख्य कथा में हास्य का अन्तर्भाव, पाँच अंकों में नाटक का विभाजन - प्रारंभ, विकास, चरमसीमा, नियति और समाप्ति में होकर वस्तु का नियोजन आदि बातें होती हैं।'[1]

पारसी रंगमंचीय शैली में शेक्सपियर की शैली अपनाई गयी है।' इन नाटकों का आरंभ कोरस से होता था। कविता और गीतों की अनावश्यक भरमार थी। कथानक फारसी की प्रेम कहानियों, अँग्रेजी की रोमांचक कथाओं तथा पुराणों की मनोरंजक विकृत प्रेम कथाओं से लिया जाता था। संवादों में आवेश के आधिक्य से स्वाभाविकता का अभाव था।'[2]

अँग्रेजी की यथार्थवादी शिल्पविधि का जन्मदाता हेनरिक जॉन इब्सन को माना जाता है। उन्होंने रंगमंच की आवश्यक सामग्री की साधनों से संपन्न बनाया। नाटकों में अध्यात्मिक विषयों के स्थानपर मानव जीवन की समस्याओं को स्थान मिला। उन्होंने रंगमंच को स्वाभाविक बनाया। समस्यामूलक नाटकों को जन्म दिया।

इब्सन की यथार्थवादी शिल्पविधि में अंकों में दृश्यों का अभाव यूनानी नाटककारों के अनुसार देशकाल और कार्य का समन्वय, मानव जीवन की द्वन्द्वपूर्ण उत्कर्ष की कहानी सहज, सरल, स्वाभाविक परंतु वेगवान कथोपकथन और कार्य की प्रेक्षकों में उत्सुकता जगाए रखनेवाली प्रवृत्ति रहती है।'[3]

बीसवी शती में पाश्चात्य नाट्यशिल्प का प्रभाव भारतीय साहित्यकारों पर पड़ा। पाश्चात्य नाट्यशिल्प बँगला द्वारा हिन्दी में आया,

---

१ डॉ. देवर्षि सनाढ्य - हिन्दी के पौराणिक नाटक - पृ.२८१।
२ - वही - - वही - पृ.२८३।
३ - वही - वही पृ.२८३

जिसे अँग्रेजी के शेक्सपियरकालीन नाटक की प्रतिच्छाया कहा गया है । ` सर्वप्रथम शेक्सपियर के जुलीयस सीजर ` का बंगला अनुवाद खेला गया । इसका बंगला के नाट्यप्रेमियों से बड़ा स्वागत हुआ । ` [१]

द्विजेन्द्रलाल के नाटकों से उनकी भावातिरेक पूर्ण शैली, हिन्दु सभ्यता और संस्कृति के प्रति उनका प्रेम, नारी पूजा शेक्सपियर के रोमैंटिक शैली के साथ हिन्दी को प्राप्त हुई । ` [२]

पारसी रंगमंचीय शैली में भारतीय वातावरण को ध्यान में रखकर शेक्सपियर की शैली हिन्दी नाटककारों ने अपनाई । कथानक में रस के स्थानपर वैचित्र्य रखा ।

` भारतेन्दु ने अपने नाटकोंद्वारा सुव्यवस्थित सुन्दर कथानक, स्वाभाविक चरित्र - चित्रण, गंभीर शिष्ट-कथोपकथन प्रस्तुत किए । ` [३]

नाट्यसाहित्य के आरंभिक काल में हिन्दी नाटककारों ने प्राचीन (संस्कृत) नाट्य तत्वों के आधारपर नाटकों का सृजन किया है । बीसवी शती में पाश्चात्य नाट्य शिल्प का प्रभाव हिन्दी नाटककारों पर पड़ा और पाश्चात्य नाट्यतत्वों के अनुसार नाटकोंका सृजन होने लगा है ।

---

१ डॉ.देवर्षि सनाढ्य - हिन्दी के पौराणिक नाटक - पृ.२८३ ।
२ वही वही पृ.२८२ ।
३ वही वही पृ.२८२ ।

12302
A

(१) कथावस्तु --

नाटक का कथानक ही वस्तु (Plot) होता है । कथावस्तु ही नाटक का आधारभूत तत्व है । मानव शरीर रचना में अस्थियोंका जो स्थान है, वही नाट्य-शरीर रूप में कथावस्तु का है । भरत ने कथावस्तु को ' इतिवृत्त ' कहा है । भरत की दृष्टि से नाटक में प्रतिपाद्य वस्तुवृत्त ख्यात होना चाहिए । कथावस्तु के दो भेद हैं -- आधिकारिक और प्रासंगिक । नाटक के प्रधान फल का भोक्ता नायक अधिकारी कहलाता है, जिसके जीवन से सम्बन्धित कथा आधिकारिक कहलाती है । इसे मुख्य कथा कहते है और यह नाटक के अन्त तक चलती है । प्रासंगिक कथा मुख्य कथा में योग देनेवाली ,नायक के चरित्र-विकास में सहायता देनेवाली होती है । इसे गौण कथा कहते हैं - यह नाटक में एक या एकसे अधिक होती हैं । प्रासंगिक कथा भी ' पताका ' ' प्रकरी ' में विभाजित होती हैं ।[१]

नाटक की कथावस्तु विषयवस्तु के दृष्टि से तीन प्रकार की मानी हैं - ' प्रख्यात, उत्पाद्य, और मिश्र । '[२] प्रख्यात कथा का आधार - इतिहास पुराण या लोक प्रसिध्द घटना होती हैं । ' उत्पाद्य ' कथा का आधार कवि कल्पना होती है । ' मिश्र ' कथा वह है जिसमें इतिहास और कल्पना दोनों हैं । विश्वनाथ के अनुसार - ' नाटक ख्यातवृत्त स्यात ' अर्थात नाटक को पुराणेतिहासादि से वृत्त याने कथावस्तु ग्रहण करना आवश्यक हैं ।[३]

हिन्दी नाट्यकारों ने शुरू में नाट्य वस्तु को इस बन्धनों में रखकर ही नाटक लिखे । किंतु भारतेंदु युग में भारतेंदु ने युग की परिवर्तित स्थितियों को लक्षित करके नाट्य वस्तु को इन बन्धनों में सीमित रखना उचित नहीं समझा । भारतेंदु जीवन के विविध क्षेत्रों से कथावस्तु के चयन पर बल देते थे । अलौकिक और असंभव घटनाओंका कथावस्तु के रूप में निषेध किया है ।

---

१ भरत मुनि - नाट्यशास्त्र - १८।१०

२ धनंजय - दशरूपक १ । ११

३ आचार्य विश्वनाथ - साहित्य दर्पण - कारिका - २८० ।

विकास काल के नाट्य प्रणेता के कथावस्तु में शैथिल्य स्वीकार्य नहीं है। कथावस्तु की एकाग्रता पर बल दिया है। नाटकीय कथावस्तु में केवळ उन्हीं घटनाओं का चित्रण होना चाहिए जो अभिनय के लिए सुकर हों।

जी.पी.श्रीवास्तव का कथन है -- "नाटक की कहानी भी इतनी ठोस होनी चाहिए कि कहीं से भी हिलाए न हिले। नाटककों अपनी कहानी में केवल एकाग्रता की धारा बहाने का ही नहीं, बल्कि वही धारा रंग मंच की घाटियों में सरासर बहनी चले।"[१] गोविंद वल्लभ पंत ने संघर्ष पूर्ण कथा सूत्र को नाटक का अनिवार्य तत्व माना है।[२]

नाट्यवस्तु नाटक का सर्वोपरि अनिवार्य अंग है। इस सम्बन्ध में डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल लिखते है --"कथावस्तु नाटक का वह मूलाधार है, जहाँ से नाटक का सारा विकास उसकी सारी परिणति और संभावनायें अपने लिए ठोस भूमि पाती हैं।[३]

पाश्चात्य नाटयाचार्य अरस्तु ने नाटक में वस्तु की चरित्र चित्रण से भी अधिक महत्व दिया है। चरित्र चित्रण के बिना नाटक बन सकता है, किन्तु वस्तु के बिना नाटक की रचना नहीं हो सकती। उसके मतानुसार कथावस्तु का विन्यास ४ तत्वों में होना चाहिए १) प्रस्तावना २) उपसंहार ३) अंक और ४) ध्रुवक"[४]

हिन्दी के पौराणिक नाटककारोंने यद्यपि कथावस्तु का आधार पुराण ही रक्खे है, फिर भी उन्होंने आवश्यकतानुसार अपनी कल्पना का योग किया है और इस प्रकार पुराणों का "ख्यातवृत्त" हमारे संमुख नवीन आदर्श और नवीन संदेश लेकर आ रहा है।

---

१ डॉ.निर्मला हेमन्त - आ.हिं.नाट्यकारों के नाटयसिध्दान्त मे (जी.पी. श्रीवास्तव के नाट्य सिध्दान्त) पृ.१९२।

२ - वही - वही पृ.२१६।

३ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - नाटक और रंगमंच की भूमिका - पृ.१०९।

४ गोविंद त्रिगुणायत - शास्त्रीय समीक्षा के सिध्दांत - पृ २१०।

` अगस्त्य ` नाटक में कथावस्तु --

पं.रामेश्वर दयाल दुबेजी लिखित ` अगस्त्य` एक पौराणिक नाटक है। (सन १९६२)

इस पौराणिक नाटक में दिखाया गया है, कि मुनि अपने तपोबल से सागरपान करके दानव से मानव की रक्षा करते है।` १

` अगस्त्य` नाटक के प्रथम अंक ` अरूणोदय` के प्रथम दृश्य में महर्षि अगस्त्य आश्रम के निकट बहनेवाली नदी के किनारे बैठे है। उनके साथ विदर्भ पुत्री लोपामुद्रा बैठी है। दोनों में स्नेहपूर्ण वार्तालाप चल रहा है। दोनों एक दूसरे पर मुग्ध है। किन्तु अपना प्रेम व्यक्त करने में संकोच कर रहे हैं। इसी समय आर्य ऋषि वसिष्ठ एक वार्ता लेकर वहाँ प्रवेशते है।

महर्षि अगस्त्य के शिष्य विश्वरथ ने दक्षिण में विन्ध्याटवी में दस्युराज शम्बर को परास्त कर दिया। जो आर्योंका सबसे प्रबल शत्रु था तथा अनेक दुर्गोंका अधिपति था। इस शुभ वार्ता के साथ एक अनुचित वार्ता भी लाते है कि विश्वरथ ने एक आर्य होते हुए भी, आर्य के लिए कालिमा लगाने - वाला कार्य किया है। उसने दस्यु कन्या उग्रा के साथ विवाह किया। इस वार्ता से ` अगस्त्य` मुनि उदिग्न हो जाते हैं। सारे आर्य जाति का अपमान देखकर लज्जित हो जाते है। ` लज्जासे मेरा मस्तक झुका जा रहा है। इच्छा होती है, इसी शांत सरिता के अतल जल में अपना मुँह छिपा लूँ। `२

प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में वृक एक अनार्य युवक जो विन्ध्याटवी में विश्वरथ के साथ था, सर्व प्रथम वार्ता महर्षि अगस्त्य को बताना चाहता है। किंतु हिंमत न होने के कारण लोपामुद्रा को सास वृत्तात बताता है। विश्वरथ का विवाह यह ऊपरी आकर्षण है - इस प्रकार लोपामुद्रा तर्क करती है।

---

१ डॉ.दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक कोश - पृ.९।

२ पं.रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.२८।

वह कहती है ` आकर्षण की बात तो ठीक है नहीं तो कहाँ विश्वरथ और कहाँ शम्बर कन्या । कहाँ आर्य, कहाँ अनार्य । ` [१] लोपामुद्रा के विचार सुनकर वृक दुखी होकर कहता है -- ` आर्य और अनार्य में उतना भेद नहीं, जितना आप समझती है । बाह्य अंतर कम नहीं है, किन्तु आर्यो की भाँति ही अनार्य भी मानव है । ऊपरका रंग आर्यो जैसा गौर वर्ण भले न हो, परन्तु अनार्योंका रक्त उतनी ही लालिमा लिए होता है, जितना आर्योंका । ` [२]

वृक की बातें सुनकर लोपामुद्रा प्रसन्न हो जाती है । रोहिणी-एक ऋषि पत्नी आकर बताती है कि इस वार्ता से महर्षि अगस्त्य बहुत व्याकुल हो गये है । उनकी व्याकुलता दूर करने का काम केवल लोपामुद्रा ही कर सकती है । लोपामुद्रा भी अगस्त्य की उदिग्नता दूर करना अपना कर्तव्य मानती है ।

तृतीय दृश्य में विह्वल अगस्त्य अपने आराध्य देवता वरुण देव का आवाहन करते है । अपने मन का बोझ कम करना चाहते है । ` आर्य उपासक अनार्योंका भक्त बन गया । एक दस्यु कन्या को अनार्य कन्या को उसने अपनी महिषी बना लिया । ` [३]

यौवन की अधिकारनी मंगलमयी उषा का भी वे आवाहन करते हैं । इतने में लोपामुद्रा वहाँ पहुँचती है । वह ऊषा बनकर उनके मन का दुख दूर करती है । आर्य और अनार्यों में विवाह कोई पाप नहीं है । अनार्य भी आर्यों जैसे मानव है उनके प्रति घृणा करना अनुचित है । ` आप विश्वरथ और उग्रा में आर्य और अनार्य का दर्शन कर रहें है । किन्तु मैं उन्हें केवल दो हृदय मानती हूँ, जो भिन्न होकर भी अभिन्न हो रहे हैं । भिन्नतासे अभिन्नताकी ओर जाना ही तो संस्कृति है । ` [४]

---

१ पं. रामेश्वरदायल दुबे - अगस्त्य - पृ. ३० ।
२ - वही - वही पृ. ३९ ।
३ - वही - वही पृ. ३७ ।
४ - वही - वही पृ. ३९ ।

लोपामुद्रा के विचार हैं कि, भिन्नता के कारण ही धरित्री टिक पायी है। भिन्न रंग, स्वर तथा कुसुम रहते हैं। किन्तु उनमें अभिन्नता के दर्शन में मांगल्य है। मांगल्य ही सौन्दर्य और संस्कृति है। जो संस्कृति अपने में भिन्न जाति-वालों को समाविष्ट कर नहीं सकती, वह संस्कृति व्यर्थ है। आर्य संस्कृति को वह भारतीय संस्कृति संज्ञासे संबोधित करना चाहती है। संस्कृति का अर्थ है सहानुभूति और विशालता। सत्य को छोडकर संस्कृति टिक नहीं सकती। प्राचीन परंपराओं को तोडने में विश्वरथ को कष्ट हुए होंगे। किन्तु गतिशील रहना ही जीवन है।

लोपामुद्रा के विचार सुनकर अगस्त्य मुनि प्रसन्न हो जाते हैं।

द्वितीय अंक के "दक्षिणापथ" के प्रथम दृश्य में विदिशादी अतिथि शाला के प्रांगण में वृक उग्रा के बच्चे के साथ खेल रहा है। आर्य नेता सोमक वार्ता लाता है, कि विन्ध्याटवी के अनार्य नृपति विन्ध्यपाल आर्यों के लिए अटल अवरोध बनकर खडे हैं। महर्षि अगस्त्य का सांस्कृतिक अभियान की कामना का पथ बंद सा हो गया है। इस गम्भीर समस्याको लोपामुद्रा आसानी से हल कर देती है। जब बल का प्रयोग व्यर्थ हो जाता है, तब स्नेह के धागे का उपयोग करना चाहिए। इसलिए आर्य और अनार्यों में स्नेह का सम्बन्ध जोडना चाहिए। वृक को स्नेह का संदेश लेकर विन्ध्याटवी के अधिपति विन्ध्यपाल के यहाँ भेजा जाता है।

द्वितीय दृश्य में अगस्त्य, लोपामुद्रा, विश्वरथ और अग्रा विन्ध्याटवी में आ जाते है। वे यहाँ पर अनार्यों के साथ स्नेह स्थापित करना चाहते हैं। विन्ध्यपाल को जब विश्वास हो जाता है कि अनार्य कन्या उग्रा को आर्यों ने राजमहिषी बनाया हैं। वह सन्धि-पत्र के लिए सहयोग देना चाहता हैं। जबतक महर्षि अगस्त्य और लोपामुद्रा दक्षिण से न लौटे तब तक विन्ध्यापल का कोई मार्ग आर्यों के लिए अवरुध्द न रहे। इसके उपरान्त महर्षि अगस्त्य और लोपामुद्रा दक्षिण कीओर प्रस्थान करते हैं।

तृतीय अंक के सन्धि विच्छेद में अगस्त्य और लोपामुद्रा में वार्तालाप चल रहा है। इतने में वृक शिखर यात्रा के बारे में सूचना देता है। इस यात्रा के बारेमें अगस्त्य अनभिज्ञ हैं। लोपामुद्रा कहती है --' आनंद के अवसर जब अप्रत्याशित रूप से उपस्थित होते हैं तब दूना सुख संतोष दिया करते हैं। इसलिए मैंने पहले सूचना नहीं दी।' [१]

लोपामुद्रा पति की आज्ञा लेकर शिखर यात्रा पर चलती है। अगस्त्य वहाँ पर देरी से पहुँचने चाहते है, क्योंकि उन्हें व्याकरण के कुछ अध्याय पूरे करने हैं।

द्वितीय दृश्य में लोपामुद्रा वेगवती नदी किनारे बैठकर कमलों की माला बना रही है। सेवक तोलक को कमल के फूल लानेके लिए भेजती है। अगस्त्य वहाँ पर पहुँचते है,आमराई में लोपामुद्रा को न पाकर और लोगों की बातें सुनकर क्रोधित हो जाते हैं। लोपामुद्रा पर अविश्वास दिखाते है। पति द्वारा उपेक्षित हुओ पत्नी मूर्छित होकर नदी कीधारा में गिरती है। उसे बचाने के लिए अगस्त्य पानी में उतरने लगते है, किन्तु सेवक तोलक आकर धारा में बहती हुई लोपामुद्रा को बचाने के लिए धारा में कूद पडता है और बह जाता है। यह करुण दृश्य देखकर अगस्त्य दुखी हो जाते है ,भूमिपर गिर पडते है। वृक उन्हें सँभलता है।

महर्षि अगस्त्य लोपामुद्रा की स्मृति से दूर भागने चाहते है किन्तु आर्य देवी के स्मृति से कैसे दूर जा सकते है ? उसकी प्रेरणा से भारतीय संस्कृति के अभियान पर दक्षिण की ओर निकल पडते है।

चतुर्थ अंक' सागर विजय' के प्रथम दृश्य में अगस्त्य मलय पर्वत में पर्णकुटी बनाकर रहने लगते है। व्याकरण अध्याय लिखने का कार्य जारी रखते है। उसी समय कालेय को के अत्याचार से लोगों का जीवित रहना कठिन हो गया था। इतना ही नहीं नीलाचल आश्रम में रहनेवाले एक सौ सत्तावन ऋषियों की हत्या

---

१ रामेश्वरदायल दुबे - अगस्त्य - पृ.७६।

कर दी थी । वृक के द्वारा यह वार्ता सुनकर अगस्त्य क्रोधित हो जाते हैं। कालेयक रात में ही ऋषियों की हत्या कर दिन में समुद्र के अंत:स्तल में छिप जाते थे। उन्हें परास्त करने के लिए युध्द की नयी सामुग्री का योजना करनी चाहिए। यह सोचकर अगस्त्य नौका तैय्यार करनेका संदेश चित्रसेन को भेजते हैं। थोडे ही दिनों में मणिभद्र अगस्त्य के पास आकर ६० छोटी और २१ बडी नौकाओं का निर्माण कार्य समाप्त करने का और नाविकों को नौका संचालन की शिक्षा पूरी करनेका समाचार लाता है। अब केवल गुरुदेव के आदेश पाते ही नौका का बेडा समुद्रपर मचलने लगेगा। अगस्त्य एक कुशल युध्दनेता के समान नाविकोंको युध्द की सूचना देते हैं। सतर्कता से काम करके नाविक कालेयकों पर विजय प्राप्त करते है।

द्वितीय दृश्य में कालेयक युध्दबंदी के रूप में समुद्र के किनारे बैठे है। मणिभद्र के नाविक तथा सैनिक प्रसन्न होकर गा रहे है। अगस्त्य सब को बधाई देते हैं।

युध्दबंदी कालेयकोंको पहले भोजन देने का प्रबंध करते है ` इस समय ये कालेयक अन्यायी नहीं, अत्याचारी नहीं, युध्दबन्दी हैं। वे हमारे जैसे ही मानव है। युध्द बन्दियों के साथ अतिथि जैसा व्यवहार होना चाहिए।`[१] बादमें सब सैनिकों को भोजन दिया जाता है। सब सैनिक अगस्त्य का जयजयकार करते हैं। मुनिकन्या जनताकी ओर से अगस्त्य का अभिनंदन करती हैं, फूलोंकी माला पहनाती है, प्रसन्न होकर गाती है।

इस तरह नाटक की कथावस्तु सरल और संक्षिप्त है। कथानक में किसी प्रकार की संधिग्धता या जटिलता नहीं है। अगस्त्य और लोपामुद्रा की कहानी आधिकारिक कथा है और विश्वरथ की कथा उसका पराक्रम गौण कथा है।

---

१ पं.रामेश्वरदायल दुबे - अगस्त्य - पृ.१११।

(२) कथावस्तु के मूलस्त्रोत

इस नाटक की कथा का आधार ऋग्वेद ,रामायण, महाभारत, श्रीरामचरित मानस, ~~महाभारत~~ आदि हैं ।

१) ऋग्वेद --

सत्रेह जाताविषिता नमोभि:
कुम्भे रेत: सिषिन्त्यतु: समानम् ।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो
जातमृषिमाहु वैशिष्ठम् ।।

यज्ञस्थल में उर्वशी को देख मित्र और वरुण का रेत:स्खलन हुआ था । वही शुक्र यज्ञीय कुंभ में जा पडा । उसीसे अगस्त्य की उत्पत्ति हुई । `[१]

२) रामायण --

रामायण के अरण्यकाण्ड में सुतीक्ष्ण मुनि रामचंद्र को अगस्त्याश्रम का पथ दिखाते थे` दक्षिणेन महान श्रीमानगस्त्य भ्रातुराश्रम: ` यानी तुम इस दिक् से जाना ठीक इस दिक् से दक्षिण ओर को चार योजन" और पथ है । चार योजन पथ चलने से ही अगस्त्य भ्राता का महाश्रीमान् आश्रम देख पडेगा ।` [२]

अगस्त्य ऋषिका पराक्रम रामायण के अरण्यकांड में इस प्रकार वर्णित है --

सह्याद्रि की दक्षिण की ओर जाने का साहस किसी को नहीं होता था । सर्व प्रथम अगस्त्य ऋषि उत्तर से दक्षिण की ओर उतरे । उन्हें इसी स्थानपर इल्वल और वातापिका आश्रम दिखाई दिया । ये नरमांस भक्षक राक्षस आश्रम

---

१ ऋग्वेद - ७ - ३३ - १३
२ रामायण - अरण्यकाण्ड - ११-३७ ।

बनाकर ब्राह्मण के रूप में यहाँ रहते थे। जो ब्राह्मण इस मार्ग से आते, उन्हें श्रध्दा से वे बुलाते थे। अपने भाई का मांस पकाकर उसे परोसते थे और जब उनका भोजन हो चुकता तो ' हे वातापि, बाहर आ' इस प्रकार से पुकारते थे। तब वह वातापि ब्राह्मण के पेट में राक्षस बनकर उसका पेट फोड़कर बाहर आ जाता था और वे दोनों राक्षस इस प्रकारसे उन ब्राह्मणों को खा जाते थे। उनका इस प्रकार का क्रम अनेक वर्षों तक जारी रहा।'[१]

वाल्मीकि रामायण की कथा के अनुसार जिस समय रामचन्द्र जी इनके दण्डकारण्यवाले आश्रम में पहुंचे, उस समय उन्होंने अन्य ऋषियों की भाँति केवल कंद-मूल फलादि से ही उनका स्वागत समादर नहीं किया वरन् उनको सुप्रसिध्द ' वैष्णव' ' धनुषय' ' ब्रह्मदंत' ' शार' अक्षय तूणीर और एक विशाल खड्.ग भी समर्पित किया।'[२]

३) महाभारत --

महाभारत में भी अगस्त्य संम्बन्धी अनेक कथाएँ प्रचलित है।

' अगस्त्य मुनिका प्रथम नाम 'मान' है। पीछे विश्वगिरि के दर्प को चूर्णकर उन्होंने ' अगस्ति' नाम पाया। '[३]

' एक बार विन्ध्याचल के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई, कि सूर्य और चन्द्रमा सुमेरू की ही परिक्रमा क्यों करते हैं, मेरी क्यों नहीं करते। उसने सूर्य से स्पष्ट रूपसे इसका कारण पूछा। सूर्य ने अपनी असमर्थता बताते हुए कहा, ' भाई। इस सम्बन्ध में मैं नितात परवश हूँ। जिन्होंने इस सारे जगत को बनाया है, उन्होंने ही मेरे लिए यह अनिवार्य कर दिया।

विन्ध्याचल को इससे बडा क्रोध आया वह सूर्य और चन्द्रमा का मार्ग अवरुध्द करने के लिए आकाश में ऊपर उठने लगा। उसकी कामना पूर्ण हुई

---

१ रामायण अरण्यकाण्ड - ११। ५६-६१

२ वाल्मीकि रामायण - अरण्यकांड - ११

३ महाभारत - वनपर्व - पृ.९६।

और सूर्य तथा चन्द्रमा उसकी महान चोटी के बहुत नीचे आ गये । चारों ओर भीषण अँधेरा छा गया और संसार के सब प्राणी संकट में पड गये । कहते हैं, तब देवताओं ने महर्षि अगस्त्य से प्रार्थना की कि, आप ही इस संकट का निवारण कर सकते है ।

ऋषि अगस्त्य से देवताओं ने इसलिए प्रार्थना की थी, क्योंकि वे जानते थे कि विन्ध्याचल उनका शिष्य है । दयालु महर्षि अगस्त्य अपनी पत्नी लोपामुद्रा के साथ विन्ध्याचल के समीप गये । अभिमानी जड नगराज से भी गुरू की अवज्ञा न हो सकी । ` अगस्त्य ने कहा ` नगराज मुझे कुछ कारणवश दक्षिण देश की ओर जाना है । मैं चाहता हूँ कि जब तक मैं वहाँसे लौट न आऊँ तब तक तुम बढना नहीं । मेरे वापस आने की राह देखना । बाद में तुम अपनी इच्छा नुसार बढ सकते हो । विन्ध्याचल को इस प्रस्तावपर सहमत कर महर्षि अगस्त्य सदाके लिए दक्षिण प्रदेश में चले गये और वहाँ से आज तक वापस नहीं लौटे । ` [१]

ऋषि अगस्त्य के जीवन ये सम्बन्ध रखनेवाली सबसे महत्वपूर्ण घटना ` समुद्र पान ` की है । महाभारत के अनुसार ` समुद्रपान ` की कथा संक्षेप में इस प्रकार है --

इन्द्र का शत्रु बलवान वृत्रासुर अपने अपने साथ कालेय नामक असुर-गणों के साथ जब देवताओं को बहुत तंग करने लगा तो भगवान् विष्णु तथा अन्यान्य देवताओं ने अपने अपने तपोबल से इन्द्र को बलवान बनाया । फलत: इन्द्रने भीषण युध्द कर अभिमानी वृत्र का निधन किया । किन्तु उसके कतिपय साथी कालेयक नामक असुर अपने परिवार के साथ अति भयभीत होकर मत्स्य तथा नक्रों से भरे हुए अगाध समुद्र की शरण में भाग गए । वहाँ छिपकर उन सबों ने व्याकुल चित्त हो तीनों लोकों का विनाश करने के लिए विचार करना आरम्भ किया । उन्होंने जाति - शत्रु - सुरोंसे बदला चुकाने के बहुतेरे

---

१ महाभारत - वनपर्व - १०४ अध्याय, श्लोक ११-२४ ।

उपाय सुझाए । इसी विचार-विमर्श में उन्हें एक उपाय सूझा कि देवताओं में जितने बुध्दिमान और तपस्वी हैं, उन सब को पहले मार डालना चाहिए ।[1]

---

1 महाभारत - वनपर्व - १०१ अध्याय श्लोक १८ । २०

(३) नाटकके पात्र या चरित्र --

प्राचीन भारतीय नाट्यशास्त्र में पात्र तथा नायक - नायिका की विस्तृत चर्चा की गई है। नाट्यशास्त्र में नायक के रूप में ऐसे सर्वगुणसंपन्न 'ख्यात' पुरूष की कल्पना की गई है जिसको केन्द्र बनाकर नाटक का संपूर्ण कथानक अग्रेसर होता है।

नायक के बारे में भरतमुनि के विचार इस प्रकार है, 'बहुत से पुरुषों में जो अग्रणी हो, उसे नायक कहते है।'[१] यहाँपर अग्रणी का अर्थ किसी वर्ग प्रतिनिधि रूप में नायक नहीं होता है, उसे ही नायक कहते है। धनंजय ने नायक की महत्ता का स्थापन करते हुए उसके अनेक गुणों की गणना की है। धनंजय के अनुसार नायक - विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियवंद शुचि, वाग्मी, रुढवंश, स्थिर, युवा, बुध्दिमान, उत्साही होना चाहिए।

भरतमुनि ने प्रकृति भेद के अनुसार नायक के भेद किए हैं -- धीरोदात्त, धीरललित, धीर शांत, तथा धीरोध्दत्त।'[२] इन चार कोटिके नायकोंमें उनके चरित्र की झाँकी मिलती है। उत्तम कोटिके नायकों का स्वभाव निश्चित रूप से उनके चरित्र की उदात्तता प्रकट करता है। इसलिए इसप्रकार के स्वभाववाले मनुष्यों की धीरोदात्त नायक के रूप में माना जाता है। धीरललित नायक कोमल स्वभाव कुलावान, सामान्य गुणों के अतिरिक्त जो शांत और संतोष रूप में रहते है, वे धीर प्रशांत कोटि के नायक प्रतीत होते हैं। अहंकार, दर्प, छल, कपट या नीच वृत्ति जिनकी रहती है ऐसे स्वभाववाले मनुष्यों को धीरोध्दत्त नायक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

---

१ भरतमुनि - नाट्यशास्त्र - पृ.२९६।

२ भरतमुनि - नाट्यशास्त्र - पृ. ३। ३२

नायक तथा प्रतिनायक के अतिरिक्त नाटक में अन्य पुरूष पात्र रहते हैं, जिनका उद्देश्य नायक अथवा प्रतिनायक को अभीष्ट की प्राप्ति में सहायता देना होता है।

भरतमुनि ने विट का लक्षण इस प्रकार दिया है --` मधुर, व्यवहारकुशल,कवि,ऊहापोह की परिस्थिति लाने में समर्थ,बात करने में चतुर विट होता है।` [१]

दूसरा सहायक पात्र है चेट, जो कलह प्रिय विकृत रूपवाला,गन्ध का सेवन करनेवाला,मानने और न माननेवाली बातों का विशेष ज्ञान रखनेवाला चेट होता है।

` संस्कृत नाटकों में विदुषक का होना आवश्यक माना जाता है। छोटे कद का बडे दाँतोंवाला,विकृत मुँहवाला,पीली आँखोंवाला और दोहरी बातें कहनेवाला विदूषक होता है।

श्वेत वस्त्रों और आभूषणों को पहननेवाला अकारण क्रोध करनेवाला और प्रसन्न होनेवाला अधम कोटिका शाकार होता है।` [२]

नायक की प्रिया अथवा अभीप्सिता नायिका होती है। नाट्यशास्त्र में नायिका की विशेषताएँ इस प्रकार है -- रूपवती,गुण,शील,यौवन,मधुरता और शक्ति से युक्त प्रसन्न,स्निग्ध,भावपूर्ण मधुर वचन बोलनेवाली, योग्य,ताल लय का ज्ञान रखनेवाली होती है।` [३]

भरतमुनिने नायिकाओं के चार भेद गिनायें है --` दिव्या,नृपतिनी, कुलस्त्री,गणिका।`[४] पर ये भेद आगे चलकर सर्व स्वीकृत नहीं हुए। अन्य शास्त्रकारों ने नायिका के तीन भेद माने है, स्वकीया,परकीया और सामान्य। अवस्था भेद से नायिका के तीन भेद होते है -- मुग्धा,मध्या तथा प्रौढा।

---

१ भरतमुनि - नाट्यशास्त्र - अध्याय ३५। ५५

२ वही वही ,, ३५ - ५६। - ५७

३ वही वही ,, ३५ - ३३। ६२

४ वही वही ,, २४। ७।

नायिका के व्यवहार और दशा भेद के कारण आठ भेद होते हैं। ` प्राचीन नाटकों में नायिका को प्रमुख स्थान नहीं मिलता था। ` [१]

हिन्दी नाटककारोंने नायक, नायिका अन्य पात्र - प्रतिनायक, खलनायक, सेवक खलनायिका, सेविका सम्बन्धी अपने विचार प्रकट किए हैं। ` कठिन से कठिन परिस्थितियों में जिस पात्र के चित्त में अस्थिरता न आये, वही नायक हो सकता है। [२]

` कथावस्तु को प्रेक्षकों तक पहुँचानेवाला माध्यम पात्र ही है। बगैरे पात्रों के नाटक की कल्पना ही नहीं कर सकते। ` [३] इस कथन से स्पष्ट होता है कि नाटक में पात्र की आवश्यकता महत्वपूर्ण है। बिना पात्र के न तो कथावस्तु में गति आ सकती है और न रस निष्पन्न ही हो सकता है।

पाश्चात्य नाट्याचार्य अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र में त्रासदी के नायक के भद्रता, औचित्य, एकरूपता, अनुरुपता इत्यादि गुण बताकर उसकी सामान्य विशेषताओं पर ही बल दे दिया है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि अरस्तू असामान्य चरित्रों की सृष्टि को प्रश्रय देते हैं। ` [४] अरस्तू ने मुख्यत: त्रासदी के नायक की चर्चा की है। अन्य पात्रों की चर्चा प्राय: नहीं की गई है। आधुनिक पाश्चात्य नाट्य विचारकोंने परिस्थिति के अनुरूप चरित्र-चित्रण की अनिवार्यता स्वीकार की है।

आधुनिक हिन्दी नाट्य साहित्य के प्रारंभिक युग में संस्कृत नाट्य परंपरा के अनुरूप पात्र योजना थी। भारतेन्दु युग में प्राचीन भारतीय नाट्य परंपरा की भाँति नायक तथा नायिका के गुण रहते थे। प्रसाद युग में भारतीय तथा पाश्चात्य नाटय परंपराका समन्वय दिखाई पडता है। प्रसादोत्तर युग में यथार्थ चरित्र-चित्रण का विकास काल कहना समीचीन है। ` आजका दर्शक यह

---

१ डॉ. रामसेवक पाण्डेय - प्रसाद की नाट्यकला - पृ.३३

२ सूरजकांत शर्मा - हिन्दी नाटक में पात्र कल्पना और चरित्र चित्रण -पृ.११

३ डॉ. चन्दुलाल दुबे - हिन्दी नाटकोंका रूपविधान और वस्तु विकास -पृ.१७

४ डॉ. नगेन्द्र - अरस्तु का काव्यशास्त्र - पृ.१०८।

चाहता है कि, पात्र चाहे पौराणिक,ऐतिहासिक हो, चाहे सम-सामयिक , उसका नायक साधारण मनुष्य होना पहली शर्त है ।`[१]

संस्कृत और हिन्दी के पौराणिक नाटक, पुराण,रामायण,महाभारत आदि के आदर्श चरित्रों को लेकर रचे गये है । इन पौराणिक नाटकों के चरित्रों में भव्यता,वीरता,त्याग,धर्म,परायणता आदि गुण है । इन देवोपम चरित्रोंके कारण ही हमारे पुराण,रामायण,महाभारत धर्मग्रंथ हैं,` जिनका प्रभाव लोगों के सार्वजनिक जीवन पर पर्याप्त मात्रा में था । आज तक यह प्रभाव स्थायी रूप में है ।`[२]

हिन्दी के पौराणिक नाटकों में आरंभ में आदर्श चरित्रों की सृष्टि हुई । बाद में आदर्श चरित्रों के साथ आदर्श हीन चरित्र भी इन पौराणिक नाटकों में आए हैं । युग परिवर्तन के साथ साथ पौराणिक नाटकों में भी परिवर्तन होने लगा । पौराणिक नाटकों के चरित्रों में मानवीय गुण प्रस्थापित होने लगे । ` ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटकों के पात्रों में आदर्शात्मकता के स्थान पर संघर्ष को विशेष महत्व दिया है । ये पात्र अमानवीय गुणों से परिपूर्ण न होकर मानवीय गुणों से ओतप्रोत है ।`[३]

` अगस्त्य` एक पौराणिक नाटक है । इसमें ` अगस्त्य` का चरित्र मानव या महामानव के रूप में हुआ है । मंत्रदृष्टा,तप करनेवाला महर्षि होकर भी मानव की सारी विशेषताएँ अगस्त्य में विद्यमान हैं । मानव होने के कारण अनेक उत्तम गुणों के साथ कुछ दोषों का भी वर्णन है । इसलिए यह चरित्र सजीव हो उठा है ।

---

१ डॉ.अवधेश चंद्रगुप्त - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक का विचार तत्व - पृ.२९७ ।

२ डॉ.देवर्षि सनाढय - हिन्दी के पौराणिक नाटक - पृ.२९७ ।

३ डॉ.अवधेश चंद्रगुप्त - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक चार तत्व -- पृ.२९७ ।

`अगस्त्य` नाटक के पात्र

महर्षि अगस्त्य --

भारत देश ऋषि मुनियों का देश है। वशिष्ठ, विश्वामित्र जैसे अनेकानेक श्रेष्ठ ऋषि माने जाते है। किन्तु भारतीय संस्कृति का प्रसार इतिहास की दृष्टि से तो `अगस्त्य`[१] का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है।

भारतीय संस्कृति का अभियान दक्षिण कीओर ले जाना, समुचे भारत में आर्य संस्कृति का प्रचार करना उनके जीवन का ध्येय था। भारत के बाहर जो अविकसित देश है, वहाँ भी भारतीय संस्कृति का प्रचार करना वे अपना उद्दिष्ट मानते है। `मेरी दृष्टि सागर के उस पार, उन बनाच्छादित द्वीपों को देख रही है, वहाँ मानवेतर अभी अपनी शैशव अवस्था में ही है और जिसमें हमें अपनी भारतीय संस्कृति का प्रचार करना है।`[२]

उत्तर से दक्षिण की ओर जाते समय विन्ध्य पर्वत को पार करना था। विन्ध्य के अलंध्य गिरी मालाओंका अधिपति विन्ध्यपाल का सामना करके ही आगे जाना पडता था। इस कार्य के लिए अगस्त्य अपने प्रतापी शिष्य विश्वरथ को भेजते है। इस कार्य में विश्वरथ विजय प्राप्त कर लेता है किन्तु साथ में शाम्बर कन्या उग्रा के साथ विवाह भी कर लेता है। इस विवाह से अगस्त्य को विषाद हो जाता है। उनके मनमें प्रश्न उठता है, `आर्य जातिका भविष्य क्या कलंक की कालिमा से ही लिखा जाएगा।`[३] जिस विश्वरथ ने आर्यों की विमल

---

१ रामचंद्र वर्मा - संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर - पृ.१३९

२ रामेश्वरदयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.६२

३ रामेश्वरदयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.२७।

ध्वजा को विन्ध्य के उच्च शिखरों पर फहराने का व्रत लिया था, उसीने विन्ध्य की घाटी में ताम्रवर्णी,असभ्य,अनार्य कन्या को अपना कर आर्यों के उच्च गौरव को पतन के गहरे गर्त में ढकेल दिया है।` [१]

महर्षि अगस्त्य को आर्य जातिका गर्व है, आर्य होने का अभिमान है। इतना ही नहीं उनमें अहं की भावना प्रबल है। वे बार बार अपना कार्य,तप और त्यांग को दोहराते हैं।` मैं आर्य जातिका पुरोहित हूं। देवों से पवित्र प्रेरणा प्राप्त कर सप्त सिंधु प्रदेश के आर्योंका सुसंगठन ही मेरा जीवन कार्य है।`[२] मैं एक मंत्रद्रष्टा ऋषि ,तप और त्याग जिसका बल है, आर्य जाति की मंगल कामना ही जिसका ध्येय है। मैं... अगस्त्य` [३]

अपने शिष्य विश्वरथ की विवाह की वार्ता सुनकर अगस्त्य दुखी होते है। लज्जित होकर नदी में छिप जाना चाहते है। वशिष्ठ ऋषि उनके मनका विषाद दूर करनेका प्रयत्न करते है। वैसे ही उनकी पत्नी लोपामुद्रा अद्वैतवाद के आधारपर आर्य और अनार्य में जो भिन्नता है, भेद है, वह वास्तव में बाह्य भेद है, आंतरिक नहीं।` मानव मानव की बीच की दूरी निकटता में परिणत होती रहना ही संस्कृति की आधार शीला है।`[४] ` अनार्यों को यदि आर्यत्व न दे सकी,तो आर्य संस्कृति व्यर्थ है।[५]` लोपामुद्रा के इसप्रकार के चिंतनधारा से प्रभावित होकर अगस्त्य उसका` मेरी प्रेरणा` कहते है। उसके विचारों से अगस्त्य निराशा छोडकर गतिशील बनते है। उनके विचारों में परिवर्तन आ जाता है। उनका ऋषि होने का गर्व या आर्य होने का` अहं ` साधारण में विलीनहो जाता है। वे कहते है --` मेरे मैं में आज तुम समा रही हो कल

---

१ रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.२७-२८।
२ वही वही पृ.२२।
३ वही वही पृ.२२।
४ वही वही पृ.६८।
५ वही वही पृ.४०।

सारा संसार समाएगा । अब केवल विश्वरथ ही मेरा न होगा वे मानव बन्धू मी मेरे होंगे जो दूर दूर बीहड बनों में रहते हैं । `[1]

संस्कृति का प्रसार करने के लिए महर्षि अगस्त्य प्रस्तुत होते है, किन्तु दक्षिण में दस्यु उन्हें रोकते है । बार बार प्रयत्न करनेपर मी आगे बढना मुश्कील बन जाता है । तब अगस्त्य राजनीतिका दूसरा तन्त्र अपनाते है । बल की जगह स्नेह का प्रयोग अधिक कार्यक्षम और प्रशास्त बन पडता है । ` बल प्रयोग में अन्ततोगत्वा विजित और विजयी ऐसे दो पक्षों का निर्माण होता है । स्नेह के प्रयोग होता है तब दोनों ही विजयी बनते है ।[2]

अगस्त्य एक कुशल राजनीतिज्ञ है । राजनीति के सभी तन्त्रों की उन्हें जानकारी है । बलका प्रयोग नहीं चलता तब स्नेहका संबंध जोडकर आगे बढना चाहते हैं । विन्ध्यपाल मी यह ममताका बन्धन का स्वीकार करता है । अन्य आर्योको मी कोई कठिनाई न पडे, इसलिए स्नेह का संधि पत्र बनाते है -- ` कमसे कम एक निश्चित समय तक तो इस सन्धिकी रक्षा की ही जाए और तब तक आर्यों के लिए इस विन्ध्याचल का कोई मार्ग अवरुध्द न रहे । `[3]

महर्षि अगस्त्य कवि और दार्शनिक मी हैं । एक जगह ठहरना उन्हें पसंद नहीं था । अगस्त्य घुमक्कड ऋषि थे । लोपामुद्रा को मी वे ममताके बन्धन में बांधकर सुख देनेवाली ` महामाये `[4] उनके रोम रोम में कवित्व ठसा है, तो उनकी कृति में दार्शनिकता उभर आती हुई दृष्टिगोचर होती है । ` मैं जब सागर के किनारे खडा होकर क्षितिज तक फैले हुए उसके नील विस्तार को देखता हूं,तो लगता है जैसे तरल सौन्दर्य का अनन्त विस्तार हमारे चैतन्य को आमंत्रण दे रहा है । `[5]

---

१ पं.रामेश्वरदयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.४५ ।
२ वही वही पृ.५७ ।
३ वही वही पृ.६७ ।
४ वही वही पृ.७४ ।
५ वही वही पृ.१००

महर्षि अगस्त्य साहित्य, संगीत, कला तीनों क्षेत्रों में निपुण थे। शिष्य शिवम् कहता है -- तीनों क्षेत्रों को आपकी प्रतिभा का दान मिल रहा है। चाहता था, आपके चरणों में बैठकर कुछ संगीत मैं भी सीख पाता।`[1] महर्षि अगस्त्य का उल्लेखनीय कार्य है कि उन्होंने सागरी युध्द के लिए नवीन तन्त्र को ढूँढ निकाला था। उसका सही प्रयोग भी वे जानते थे।[2] जो सामग्री स्थल युध्द के लिए उपयुक्त है वह सामग्री समुद्र पर उपयोगी नहीं बनती। अत: उन्होंने नौका निर्माण का कार्य कर दिया था। चित्रसेन से वे कहते हैं --` उनके आतंक को मिटाने के लिए तुम्हें एक समर्थ नाविक बेडा चाहिए। यही न! मैंने उसका प्रबंध किया है। कई मास पहलेसे ही मैंने नौका निर्माण का कार्य प्रारंभ करा दिया था।`[3]

महर्षि अगस्त्य की युध्दनीति प्रशंसनीय थी। कालेय कों के साथ सागरी युध्द करने का उनका प्रबंध किसी कुशल सेनापति के कार्य से कम नहीं है। शत्रुपर आक्रमण करने का आधुनिक तन्त्र की सूचना सैनिकों का प्रमुख सेनापति मणिचंद्र को देते हैं। ` अर्धरात्रितक संपूर्ण टुकडियाँ समुद्र तट पर पहुँच जाएँ। ज्यों ही मणिचंद्र नाविक चरोंसे कुछ संदेश मिले, पूरा बेडा तीन दिशाओं से कालेयकों की नौकाओं को घेरने का प्रयत्न करेगा।`[4]

दैत्यराज इल्वळ और उसका भाई वातापि दोनों मिलकर निरीह ब्राह्मणों को त्रस्त करते थे। दुष्ट इल्वल वातापि को काटकर उसके मांस के भोजन का प्रबंध करता था। उस भोजन से भोजन कर्ताओंका प्राणांत हो जाता

---

१ रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.९२।

२

३ रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.४५।

४ वही वही पृ.१०४।

था। किन्तु अगस्त्य ने इल्वल के यहाँ भोजन का स्वाद लेकर वातापि को पचा लिया था।' [१]

महर्षि अगस्त्य का जीवन तप, त्याग, साहित्य, कला, संगीत, व्याकरण के साथ पराक्रम, युध्द निपुणता, आधुनिक युध्द सामग्री का तन्त्र जानना आदि परस्पर विरोधी गुणों से प्रशंसनीय बन गया है। भारतीय संस्कृति के प्रचार के द्वारा लोक मंगल की पवित्र भावना के कारण उनका जीवन अन्य ऋषियों से अलग सा दिखाई देता है।

लोपामुद्रा --

विदर्भ राजा की कन्या' लोपामुद्रा' [२] मन्त्रद्रष्टा थी। इस का स्पष्ट अर्थ है, लोपामुद्रा ने मंत्रों को देखा था या मंत्रों की रचना की थी।' वेदकाल की विश्वतारा, घोषा, लोपामुद्रा आदि प्रख्यात ब्रह्मवादिनी नारियों ने ऋग्वेद के कुछ मंत्रों की रचना की थी। [३]

लोपामुद्रा रूप-लावण्य, सद्गुण और लोकोत्तर यौवन-गत सौन्दर्य के कारण प्रसिध्द पा रही थी। विदर्भ राजा की इच्छा थी कि उसका विवाह किसी योग्य तथा महान वर के साथ हो। स्वयं लोपामुद्रा भी किसी विद्वान व्यक्ति के साथ जीवन यापन करना चाहती है। लोपामुद्रा ने विभिन्न स्थानों पर जाकर ज्ञानार्जन प्राप्त किया था। वह विद्वान पति की इच्छा करती है, साथ ही स्वयंको अपने पति के लिए योग्य बनाने के लिए परिश्रम करती है। ' पार्वती की तरह उसने कम साधना नही की थी और अपनी योग्यता बढानेके लिए तथा ज्ञानार्जन के लिए स्थान स्थान की यात्री की थी।' [४]

---

१ रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.८३।

२ सिध्देश्वरशास्त्री चित्राव - प्राचीन चरित्र कोश - पृ.९०।

३ नारायण विष्णु केसरकर - मोहन राकेश के नाटकोंके नारी पात्र - (१९८८ ई.) पृ.४।

४ रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.६।

विदर्भ राजा की कन्या होने के कारण लोपामुद्रा का बाल्यकाल अत्यंत ऐश्वर्य और वैभव में बीत गया था। विवाहोपरान्त भी वह वैभव में ही गृहस्थ जीवन का आस्वाद लेना चाहती है। अत: वैभव प्राप्ति के लिए महर्षि अगस्त्य को राजाओं के द्वार द्वार पर जाना पडा। आखिर मणिवती के दैत्य राजा इल्वल के पास जाते है। अगस्त्य को इस बात का ज्ञान है कि, सभी नारियाँ पहले मनचाहा पुरूष चाहती है और फिर मनचाही सभी वस्तुएँ।'[१]

अगस्त्य का प्रिय शिष्य विश्वरथ विन्ध्याटवी में दस्युओं पर विजय प्राप्त करता है किन्तु दस्यु कन्या से विवाह करता है। इस घटना से अगस्त्य उद्विग्न होते है। उनकी उद्विग्नता लोपामुद्रा मधुर वाणी और तर्कपूर्ण विचारोंसे दूर करती है। यहाँ आदर्श पत्नी, मित्र, सखा सभी रूपों में लोपामुद्रा दिखाई देती है। अगस्त्य की उदिग्नता, निराशा केवल अहं भावना से आयी हुई है। आर्य उच्च और अनार्य नीच जाति के होते है। आर्य - अनार्य में कोई भेद नहीं है। यह भेद ऊपरी ही है। अगस्त्य की अहं भावना दूर करने में वह सफल होती है।

लोपामुद्रा विदुषी है, उसने धर्म, राजनीति, संगीत, व्याकरण आदि सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त किया है। लोपामुद्रा के शब्दों में संस्कृति का अर्थ सहानुभूति और विशालता ही है।[२] यहाँ लोपामुद्रा ने संस्कृति का भावमूलक अर्थ बता दिया है। इतना ही नहीं संस्कृति का अर्थ स्पष्ट करते वह संस्कृति को स्थल, काल बध्द करना नहीं चाहती, बल्कि व्यापक रूप में प्रस्तुत करती है। जीवन सम्बन्धी विचार है -- गति ही जीवन है। गति रूकी, कि दुर्गतिने स्थान लिया।'[३] संस्कृति की अवधारणा सम्बन्धी लोपामुद्रा के विचार

---

१ पं. रामेश्वरदयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.७५।

२ वही वही पृ.४३।

३ वही वही पृ.४३।

माननीय है ` संसार में जो कुछ सुंदर व सत्य दिखाई दे, उसे प्राप्त कर आगे बढते जाना ही तो संस्कृति का प्रथम लक्षण है ।` [१]

लोपामुद्रा आर्यों के अहंकार का बार बार उल्लेख करती है --` आर्य बनते नहीं, जन्म लेते हैं। इसीलिए केवल आर्य कुलकी माताएँ ही आर्य पैदा कर सकती है, यह शुध्द भ्रम है।`[२] लोपामुद्रा के विचार अगस्त्य का चिंतन का विषय बना । अत: लोपामुद्रा स्वयं को कृतार्थ समझती है ।

आर्य श्रेष्ठ विश्वरथ को विन्ध्याटवी में दस्युयों ने विरोध किया । विश्वरथ ने बल प्रयोग का मार्ग बना लिया । इस बल प्रयोग के कारण लोपामुद्रा को दुख होता है। ` विश्व मंगलकामना का पथ प्रतिशोध और हिंसा का नहीं होना चाहिए।`[३] बल प्रयोग से किसी को अपनाया नहीं जाता । विन्ध्याटवी में बल प्रयोग ही किया गया, किन्तु दस्युओं को अपने अनुयायी नहीं बना सके ।

समाज में देश में जो दंगे, कलह होते हैं उसके पीछे कोई न कोई कारण होते है। लोपामुद्रा अपना मत स्पष्ट करते हुए कहती है, ` मानवोंकी अनन्त कलह का मूल इस बात में ही है, कि वह प्राय: किसी वस्तु या घटना को केवल अपनी ही दृष्टि से देखता है, अपने ही नापसे नापता है और सबसे बडी विभ्रान्ति तो यह है कि वह अपने ही दृष्टिकोण को ठीक समझता है। यही अहम् सारे हिंसा-ताडवों का मूल है।`[४] मानव में एक दूसरे प्रति वैर का कारण बताते हुए कहती है -- असभ्यों के प्रति सभ्यों का अविकसितों के प्रति विकसितों का और असंस्कृतों के प्रति संस्कृतों का यह घृणा का भाव ही वैर का मूल कारण है।[५] जब तक यह वैर का, घृणा का भाव दूर नहीं हट सकता, तब तक मानव

---

१ पं. रामेश्वरदयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.४४ ।
२ वही वही पृ.४४ ।
३ वही वही पृ.५२ ।
४ वही वही पृ.५२ ।
५ वही वही पृ.५४ ।

मानव में स्नेह का भाव जागृत नहीं हो सकता है । जब महर्षि अगस्त्य का सांस्कृतिक अभियान दूर बीहड जंगलों तक जा नहीं सकता । तब वह सबको स्नेह का मार्ग अपनाने को बताती है । यह मार्ग आगे चलकर यशस्वी हो जाता है । लोपामुद्रा के विचार है कि पुरानी मान्यताओंको अब छोडना चाहिए और नवीन मान्यताओंका स्वीकार करना चाहिए । ' एक ही मान्यता बदली हुई परिस्थितियों में अपना मूल्य खो बैठती है, इसलिए नये नये मार्ग प्रशस्त होते रहने चाहिए । ' [१]

विन्ध्याटवी के बलवान अधिराज के साथ बल का प्रयोग न करके स्नेह का सम्बन्ध जोडना ही उचित है । विन्ध्यापाल का विश्वास संपादन करने के लिए वह विश्वरथ और उग्राकी विवाह का प्रमाण देती है ।

अध्यात्म, राजनीति, समाजशास्त्र का गम्भीर अध्ययन करनेवाली लोपामुद्रा कभी कभी भावदर्शी कवयित्री बन जाती थी । उसके सहज अभिव्यक्ति से सुन्दर काव्य स्फूट पडता था । 'लजीली निशा तो कब की अपना मुख छिपा चुकी । भुवन भास्कर के किरण कर कार्य निरत हो चुके हैं । ' [२]

कुंज पर्वत के वनराशि से मोह पैदा होता है । उसे छोड जाना जी नहीं चाहती । ' जब दक्षिण पवन से कोई प्यारा संदेश पाकर यही हरी भरी वनराजि झूम उठती है, तब सच कहती हूँ, इच्छा होती है कलकण्ठी काकली बन कर यहीं कूजती फिरूँ । ' [३]

लोपामुद्रा केवल विदुषी ही नहीं, पति-सेवा में किसी प्रकार की कमी नही रखती है । जब महर्षि अगस्त्य कुंज पर्वत से स्थलांतर करना चाहते है तो इस कृतिसे दो निष्कर्ष निकालती है । कुंज पर्वत की इस कुटी का आकर्षण नही रहा होगा या निश्चय ही मेरी सेवा में कोई त्रुटि रहने लगी है । ' [४]

---

१ रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.५७ ।

२ वही वही पृ.७३।

३ वही वही पृ.७८ ।

४ वही वही पृ.७४ ।

लोपामुद्रा महर्षि अगस्त्य के अन्य शिष्य गणों के साथ शिखर यात्रा बनाती है। शिखर यात्रा पर अगस्त्य उसे आमराई में ठहरने का आदेश देते हैं। लोपामुद्रा वेगवती नदी के किनारे कमलों की माला बनाती हुई बैठी थी। शिष्य तोल्क कमल तोडने गया था। इतने में महर्षि अगस्त्य लोगों की बातें सुनकर और उसे तोल्क के साथ अकेली देखकर क्रोधित हो जाते है। उनके मनमें संदेह पैदा होता है --` किन्तु तुम इधर अकेली क्यों आई ? तोल्क के अलावा किसी और को भी साथ ले जाती। किसी को कुछ कहने का अवसर ......[१]

अगस्त्य के इस कथन से लोपामुद्रा चकित हो जाती है। पति के द्वारा लगाया गया अविश्वास के लांछन से वह विवर्ण हो जाती है। आप क्या कह रहे है ? आपको आज क्या हो गया है ? इतना परिहास तो न कीजिए। अपनी लोपापर,अपनी प्राणवल्लभा पर विश्वास.....[२] यह अविश्वास के गहरे आघात से लोपामुद्रा मुर्छित होकर शिलापर गिरती है, शिलासे खिसक्कर नदी में गिरती है, किन्तु लोपामुद्रा नदी की धारा में बह जाती है,तोल्क उसे बचाने के लिए नदी में कुद पडता है। लोपामुद्रा का जीवन चरित्र समाप्त हो जाता है।

अगस्त्य भी उससे प्रेरणा पाकर अपना सांस्कृतिक अभियान दक्षिण की ओर तथा दूर दूर बीहड जंगलो तक ले जाते हैं। भारतीय संस्कृति से` मानव संस्कृति` का अभिधान देने में सफल बन जाते है।

लोपामुद्रा का जीवन चरित्र संपूर्ण नाटक के आधे हिस्से में ही चित्रित किया है। संपूर्ण नाटक में व्याप्त नहीं है। किन्तु कथानक उसके ईर्दगिर्द ही घुमता है। उसमें उसके चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट रूप में ऊभर आयी हैं। जो पूर्ण चरित्र साकार करने में सफल बना है। लोपामुद्रा एक विदुषी स्वामीमानी, सौन्दर्यवती आर्य नारीके रूपमें चरित्र मनोवैज्ञानिक बन गया है। लोपामुद्रा का

---

१ पं.रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.८३।

२ वही वही पृ.८४।

आदर्श पतिनिष्ठ स्त्री के रूप में चरित्र सुस्पष्ट बन गया है, जो भारतीय नारी को हमेशा प्रेरणामयी, मंगलदायी रहेगा ।

विश्वरथ --

विश्वरथ आर्योंका नृपति है, आर्य श्रेष्ठ है। वह पराक्रमी, दृढ संकल्प और युध्द निपुण है। महर्षि अगस्त्य का प्रिय शिष्य है। महर्षि अगस्त्य भारतीय संस्कृति का अभियान दक्षिण की ओर ले जाना चाहते है। तब दक्षिण की ओर जानेका मार्ग बनानेका कार्य विश्वरथ पर सौंपा जाता है। विन्ध्यचल के क्षेत्र शम्बर तथा दस्यु विश्वरथ को विरोध करते है। आखिर विश्वरथ शम्बर को मार देता है और मार्ग प्रशस्त करता है। विश्वरथ का विश्वास है कि बारबार अपयश आनेसे अपना ध्येय छोडना नहीं चाहिए। ` संकल्प छोडने का प्रश्न नहीं है, प्रश्न है सिध्दि प्राप्त करनेके लिए सुगम मार्ग निकालेनका। कोई नया मार्ग खोजना होगा।[१] ` इस प्रकार दस्युओंपर विजय प्राप्त करने के लिए राजनीति के नये तन्त्र को अपनाना चाहता है।

इस नये तन्त्र को लोपामुद्रा ढूँढ निकालती है। बल प्रयोग के स्थानपर प्रेम स्नेह का प्रयोग करना ही उचित होगा। सब इस विचार को स्वीकृति देते है। इस मार्गपर चलने की आज्ञा महर्षि अगस्त्य विश्वरथ को देते है और विश्वरथ भी गुरुकी आज्ञा का स्वीकार करता है। उन्होंने दिखाऐ हुए मार्गपर चलना अपना परम कर्तव्य मानता है।

विश्वरथ आदर्श शिष्य है, उसीप्रकार एक आदर्श प्रेमी भी है। उसका अनार्य कन्या उग्रा से प्रेम हो जाता है। उसका प्रेम ऊपरी प्रेम नहीं है। ` आर्य श्रेष्ठ को आकर्षित करनेवाला सौन्दर्य ताम्रवर्णी दस्यु कन्या में कहाँ ? हृदय ही हृदय को अपनी ओर खींचता है।`[२] विवाह के उपरांत आर्य विश्वरथ जल्दी उत्तर दिशा में नहीं आता है। इसका कारण किसी प्रकार का भय का अनुभव करता होगा। ऐसा संदेह लोपामुद्रा के मनमें आता है, तब सेवक वृक कहता है -- विश्वरथ और भय एक साथ नहीं रह सकते। वह आर्य श्रेष्ठ ही नहीं, मानव श्रेष्ठ भी है। न आनेका कारण दूसरा ही है।`[३]

---

१ पं. रामेश्वरदयाल दुबे - अगस्त्य - पृ. ५६।
२ वही वही पृ. ३२।
३ वही वही पृ. ३२।

महर्षि अगस्त्य, विश्वरथ के विवाह से दुखी हो जाते हैं। वे सह नहीं सकते कि एक अनार्या आर्य की पत्नी बने। लोपामुद्रा के विचार इससे भिन्न है - ' आप विश्वरथ और उग्रा में आर्य और अनार्य के दर्शन कर रहे हैं, किन्तु मैं तो उन्हें केवळ दो हृदय मानती हूँ, जो भिन्न होकर भी अभिन्न हो रहे है।'[१] महर्षि अगस्त्य की आज्ञा के अनुसार विश्वरथ उनके साथ दक्षिण की ओर विन्ध्याटवी में उग्रा और पुत्र के साथ जाता है। वहाँ पर दस्युओंका राजा विन्ध्यपाल सबका प्रेम से स्वागत करता है तथा विश्वरथ विन्ध्यपाल को आदर के साथ प्रणाम करता है। आर्य और अनार्य के मिलन के सुन्दर दृश्यपर सब लोग मुग्ध हो जाते हैं। लोपामुद्रा इस मधुर दृश्यपर कुबेर की संपत्ति न्योछावर कर देना चाहती है। वह विश्वरथ को समय समय पर समझाती है, कि बीच की दरी के कारण जिसे हम कभी कभी शत्रु समझ बैठते हैं, निकट पहुँचने पर वह स्नेही, मित्र निकलता है।

विश्वरथ एक पराक्रमी राजा, आदर्श शिष्य, आदर्श प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। महर्षि अगस्त्य पर उसकी नितांत श्रध्दा है। गुरू की आज्ञा का पालन करना अपने जीवन का परम कर्तव्य समझता है। इतना ही आर्य देवी लोपामुद्रा के आदेश का भी वह पालन करता है। नम्रता के साथ वह लोपामुद्रा से कहता है, ' देवी! आपकी सद्शिक्षाएँ ही मेरे पथ की दीप शलाकाएँ रही है। मैं उन्हीं के प्रकाश में बढता रहा हूँ, बढता रहूँगा।'[२]

महर्षि अगस्त्य विन्ध्यपाल से स्नेह संधि करते है और विश्वरथ को वहाँ ठहरने की आज्ञा देकर स्वयं दक्षिण में भ्रमण के लिए चलते है। उस समय विश्वरथ कहता है, ' गुरूदेव! आपके चरणों में मेरा कोटि कोटि प्रणाम।'[३] ' जैसी आज्ञा '[४]

---

१ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.३९।
२ - वही - वही पृ.६८।
३ - वही - वही पृ.६९।
४ - वही - वही पृ.५८।

` आपका आदेश सिर माथे पर । `[1]

उपर्युक्त संवादोंसे विश्वरथ की गुरुभक्ति ,प्रेम,श्रध्दा दृष्टिगत होती है ।

वृक का पाण्डित्य देखकर महर्षि लोपामुद्रा भी आश्चर्य चकित रह जाती है । उसके सुन्दर विचार और उन विचारों की अभिव्यक्ति से लोपामुद्रा प्रसन्न हो जाती है । उसकी प्रशंसा भी करती है ।

वृक चतुर है, निर्भीक है । अपने विचार निर्भीकता से प्रकट करता है ।
` क्षमा करें देवी ।`
आर्य अभीतक अनार्यों को समझ नहीं सके हैं । निकटतासे ही परिचय बढता है । परिचय से भ्रांतियाँ दूर होती है ।` [2]

महर्षि अगस्त्य तथा लोपामुद्रा वह सेवक है, किन्तु उन दोनों का वृक के साथ व्यवहार पुत्र जैसा है ।

वृक का बच्चोंसे बहुत लगाव है । उसे बच्चों के साथ खेलना,कूदना प्रिय लगता है । बच्चों को देखकर वह स्वयं बच्चा बन जाता है । वह कहता है --
` किसी भी बच्चे को जब गोदमें उठा लेता हूँ, मैं सब कुछ भूल जाता हूँ । मेरी यही इच्छा होती है, कि मैं बच्चों के साथ सदा खेलता रहूँ ।` [3] वृक बच्चों के साथ बच्चा बनता है, बडों के साथ बडा बनता है, राजनीतिज्ञ के साथ कुशल राजनीतिज्ञ बन जाता है । आर्योंका अनार्यों के साथ क्षोभजनक वर्तन है,उन्होंने आर्य-अनार्यों के बीच में प्राचीरें खडी कर रखी है । वह कहता है ` यहाँ के आर्य मुझे पद-पद पर संदेह की दृष्टि से देखते हैं । यदि आपका और गुरुदेव का स्नेह और विश्वास मेरी अचल सम्पत्ति न होती तो मैं कभी का आर्य-विद्रोही बन गया होता ।` [4]

---

१ पं.रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.६८ ।
२ वही वही पृ.३२ ।
३ वही वही पृ.५० ।
४ वही वही पृ.५१ ।

वृक --

` वृक ` महर्षि अगस्त्य प्रिय सेवक है। वह अनार्य है, किन्तु अनार्य होकर भी वह असंस्कृत, अशिक्षित नहीं है। वृक बुध्दिमान है, आर्यों के निकटता के कारण उसके आचार-विचार शुध्द हो गये है। आर्य श्रेष्ठ विश्वरथ ने वेद मन्त्र सिखाकर उसे ज्ञानी किया है। वृक कहता है, उन्होंने मुझे गायत्री मन्त्र दिया है। उनके शब्दों में उन्होंने मुझे आर्य बना लिया है।` [१]

महर्षि अगस्त्य और देवी लोपामुद्रा का सहवास उसे सौभाग्य से ही प्राप्त हो चुका है। और उनके सानिध्य के कारण वह चिंतनशील दार्शनिक बन गया है। विश्वरथ का अनार्य कन्या उग्रा से विवाह यह बात आर्यों को बहुत खेदजनक लगती है। लोपामुद्रा भी कहती है-यह विवाह ऊपरी आकर्षण ही है। नहीं तो कहाँ आर्य और कहाँ अनार्य। दोनों में कोई मेल नहीं है। यह बात वृक को खटकती है। वह कह उठता है ` आर्य और अनार्य में उतना भेद नहीं, जितना आप समझाती हैं। आर्य साफ साफ सुथरे घरों में रहते हैं, यज्ञ करते हैं, मन्त्रोचारण से ध्वनित वायु - मण्डल में रहकर उच्च जीवन जीते हैं, उधर आपके शब्दों में ` अनार्य ` झोपड़ियों में अर्ध्दनग्न रहते हैं। बाह्य अंतर कम नहीं है। किन्तु आर्योंकी भाँति अनार्य भी मानव है।` [२]

आर्यश्रेष्ठ विश्वरथ दक्षिण में विन्ध्याटवी में अनार्यों पर विजय प्राप्त करने में असफल बनता है। तब महर्षि अगस्त्य नया मार्ग बनाने में वृक की ही सहायता लेते है। क्योंकि वृक पर उनका पूर्ण विश्वास है। कोई भी कार्य वह सफलता के साथ कर सकता है। महर्षि अगस्त्य कहते है --` तुझे सन्देश वाहक का कार्य करना है। तुझे आर्य और अनार्य के बीच में अब एक सूत्र सम्बन्ध बनना है। लोपामुद्रा की दीक्षा से दीक्षित वृक। तुम वह सब कुछ कर सकोगे, जिससे दक्षिणापथका मार्ग प्रशस्त होगा।` [३]

---

१ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.३१।

२ वही वही पृ.३१।

३ वही वही पृ.५८।

गुरु की आज्ञानुसार वृक दक्षिण में राजा विन्ध्यपाल के यहाँ अगस्त्य का संदेश लेकर जाता है। विन्ध्यपाल के यहाँ अपने गुरु का आदरपूर्वक सन्मान बढ़ता है। स्नेह संधि में सूत्र का कार्य निभाता है।

लोपामुद्रा के शिखर यात्रापर जानेके बाद जब अगस्त्य उसे अविश्वास दिखाते है। तब लोपामुद्रा मुर्च्छित होकर नदी में डूब जाती है। यह दृश्य देख कर अगस्त्य अत्यंत दुखी होते है। नदी में कूदना चाहते है। वृक वहाँ पहुँचकर अगस्त्य को व्याकुल होकर बार बार देवीजी के बारेमें पूछता है।
`गुरुदेव। गुरुदेव। क्या हुआ ? कहिए तो ? मेरी मातृतुल्य लोपादेवी।`[१] मातृतुल्य लोपादेवी की मृत्यु देखकर वृक व्यथित होता है। फिर भी महर्षि अगस्त्य में धैर्य समेटने में सहायता करता है। `गुरुदेव। धैर्य धरें। विधि के विधान को कौन टाल सकता है।`[२] अगस्त्य इस स्थान से दूर जाना चाहते है, जहाँ लोपामुद्रा की स्मृति नहीं दिलायेगी। वृक का कथन हार्दिक बन पडा है - `आप इस स्थान से दूर जा सकते है, इस कुंज पर्वत से दूर जा सकते है किन्तु आर्य देवीसे दूर नहीं जा सकते।`[३]

वृक गुप्तचर के कार्य में भी कुशल है। दक्षिण में कालेयक आततायियोंका आतंक सामाजिकको असह्य हो रहा है। ये कालेयक रात में भूमिपर आ जाते है और ऋषि मुनियोंको खा जाते है और दिन में समुद्र के अंत:स्तल में छिप जाते है। इस प्रकार की सूचना वह महर्षि को देता है। युध्द के लिए नौका निर्माण का कार्य कहाँतक पहुँचा इत्यादि जानकारी प्राप्त करने के लिए वृक को ही भेजा जाता है। वृक भी यह काम बहुत शीघ्रता से और कुशलतासे कर देता है।

सागर-विजय तथा अत्याचारियों के विरूध्द युध्द में वृक का कार्य उल्लेखनीय है। युध्द में नाविक चित्रसेन, मणिभद्र को पूर्ण सहायता करता है।

---

१ पं. रामेश्वर दयाल दूबे - अगस्त्य - पृ.८५।
२ वही वही पृ.८६।
३ वही वही पृ.८७।

नाटक में वृक गम्भीर दार्शनिक चर्चा करता हुआ उभर आता है, किन्तु कुछ स्थलों पर हास्य विनोद में मग्न दिखाई पड़ता है।

वृक अपने गुरूदेव की सेवा आखिर तक करता रहता है। नाटक में नायक-नायिका के अनंतर वृक का ही चरित्र पूर्ण विकसित तथा मनोवैज्ञानिक बन पड़ा है।

महर्षि वशिष्ठ --

विष्णुपुराण और भागवत में मित्रावरूण से वशिष्ठ[1] के पुनर्जन्म की कथा उल्लेखित हुई है। तपस्वी बहुत हुए किन्तु महर्षि वशिष्ठ की तरह इन्द्रियों को वश में करनेवाला कोई नहीं हुआ। ' इंदि,यों को वश में करने के कारण महर्षि का नाम वशिष्ठ पड़ा है।'[2]

' महर्षि वशिष्ठ का नाम सप्तर्षि में लिया जाता है।'[3]

महर्षि वशिष्ठ में प्रगल्भ बुध्दि, विशाल ज्ञान, तप, त्याग तथा दार्शनिक भाव पुरेपूर है। अहं भाव से भरे हुए आर्य ऋषि है। महर्षि अगस्त्य के मित्र, बन्धु, सखा, उपदेशक सभी रूपों में इस नाटक में चित्रित है। विन्ध्याटवी में विश्वरथ ने दस्युयोंपर विजय प्राप्त की, किन्तु दस्यु कन्या के साथ विवाह किया। यह बात उन्हें उचित नहीं लगती। उन्हे इस बात पर बहुत क्रोध आता है। शीघ्र ही महर्षि अगस्त्य के पास जाकर इस अनुचित वार्ता का समाचार देते है। महर्षि अगस्त्य की तरह उनका ' अहं ' जागृत होता है। किन्तु जल्द ही अपने पर काबू करते है। वशिष्ठ दार्शनिक कवि भी है, वे कहते है --
' मनुष्य के बाहर जैसा एक विस्तृत संसार है, वैसा ही एक संसार मनुष्य के हृदय में भी रहता है। मनुष्य अपने ज्ञान बलसे, बाहुबल से इस बाह्य संसार पर विजय प्राप्त कर लेता है, किन्तु कभी कभी वही व्यक्ति अपने आंतरिक संसार में बुरी तरह पराजित होता है।[4] तब भी अगस्त्य के ध्यान में विश्वरथ तथा अनार्या उग्रा के

---

१ महाभारत वनपर्व - पृ.९६।

२ पुराण विशेषांक - ' कल्याण ' पृ.३०३।

३ पं.रामेश्वर दयाल दुबे - महर्षि अगस्त्य -निबंध - पृ.३।

४ वही वही पृ.२५।

विवाह की बात नहीं आती है। वशिष्ठ कह उठते है -- विश्वरथ ने वह कार्य किया, जो किसी आर्य के लिए उचित न था। शाम्बर कन्या उग्रा को विश्वरथ ने अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया है। `[१]

महर्षि वशिष्ठ दार्शनिक है, बुध्दि वादी है, चतुर है, ज्ञानी भी है। `हृदय` के बारेमें उनके विचार चिंतनीय है। `मानव का हृदय एक ऐसा रहस्य है, जो कभी पूर्णतया उद्घाटित नहीं हो सकता, एक ऐसा प्रश्न है जो कभी हल नही किया जा सकता। हृदय के कोमल प्रदेश में तीव्र विराग कब राग में परिणत हो जाय, प्रणय कब द्वेष का रूप धारण कर ले, कहा नहीं जा सकता।`[२]

महर्षि अगस्त्य को विश्वरथ के विवाह से दुख होता है। वे बहुत लज्जित भी होते है। लज्जा के कारण नदी में मुँह छिपा लेनेकी बात करते है। तब वशिष्ठ में एक उपदेशक जागृत होता है। वे अगस्त्य के अधैर्य को दूर करने के लिए कहते है -- `विषम परिस्थितियों को भी अपने अनुकूल बना लेने में ही आर्यत्व और पुरूषत्व है। उठो अगस्त्य।` [३]
आगे चलकर महर्षि अगस्त्य की अस्मिता जागृत करने के लिए वशिष्ठ कहते है `क्या यह मंत्रद्रष्टा अगस्त्य को बताना पडेगा कि जब बाह्य परिस्थितियाँ विषम हो जाती हैं, व्यक्ति सहज ही अंतर्मुख बन जाता है।`[४]

`अगस्त्य` नाटक में प्रथम अंक में प्रथम दृश्य में ही महर्षि वशिष्ठ का चित्रण आता है। चरित्र संक्षिप्त होते हुए भी, अपने तप और त्याग से दीप्त व्यक्तित्व के सशक्त चिंतनधारा से पाठक को प्रभावित किया है।

---

१ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.२६।
२ वही वही पृ.२६।
३ वही वही पृ.२८।
४ वही वही पृ.२८।

शिवम्

महर्षि अगस्त्य का शिष्य है। शिवम् को व्याकरण तथा संगीत की जानकारी है। वह महर्षि अगस्त्य से संगीत सीखना चाहता है ` आपके चरणों में बैठकर कुछ संगीत मैं भी सीख पाता, किन्तु कुछ प्राप्त नहीं कर पा रहा हूँ।`[१] अगस्त्य और शिवम् में गुरु शिष्य का नाता है, किन्तु दोनों का बर्ताव पिता-पुत्र जैसा लगता है। अगस्त्य उसे लेखन पूरा क्यों नहीं हुआ ? जवाब में शिवम् बिना संकोच कहता है --` आज प्रात:काल विलम्बसे उठा, इसलिए पूरा न कर सका। अब पूर्ण किये ही देता हूँ। `[२]

वृक कालेयक आततायियों का अत्याचार का समाचार लाता है। अब यह अत्याचार असह्य होता जा रहा है। महर्षि अगस्त्य शीघ्र ही शिवम् को भरद्वाज आश्रम में भेजते हैं। महर्षि अगस्त्य का शिष्य शिवम् पर पूर्ण भरोसा है।` तुम शीघ्र भरद्वाज आश्रम जाओ। देखो, तुम वहाँ कितने क्या सहायक हो पाते हो। `[३]

अत्याचारी कालेयकों पर विजय पाने के बाद युध्दबंदी कालेयकों को पहले भोजन देने का आदेश जब महर्षि देते हैं। तब शिवम् को आश्चर्य लगता है और क्रोध भी आता है --` कालेयकों को भोजन ? जो अन्यायी, अत्याचारी आततायी हैं, जिन्होंने निर्मम हत्याएँ की हैं। जिन्होंने मेरी पीठ तोड दी, उनको भोजन ? और मैं भोजन दूँ ?`[४] फिर गुरु की आज्ञा मानकर भोजन प्रिय शिवम् शत्रुओं को भी भोजन देता है।

इसतरह व्याकरण और संगीत सीखनेवाला शिवम् अत्याचारियों के विरूध्द युध्द में हिस्सा लेकर सफल रहता है।

---

१ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.९२

२ वही वही पृ.९१।

३ वही वही पृ.९५।

४ वही वही पृ.११०।

` मणिभद्र ` एक कुशल नाविक है। वैसेही वह समुद्र में युध्द करने में निष्णात है। इस युध्द में वह भी सफलता प्राप्त करता है।

` चित्रसेन ` जनपद का नायक है। काल्यक के अत्याचार से चिंतित है। जनता को इस अत्याचार से विमुक्त करने में वह कार्यशील है। वह पराक्रमी है, युध्द का अनुभव उसे है। वह कहता है --` गुरुदेव। आप आदेश दीजिए,हम सब आततायी काल्यकों पर काल के समान टूट पडेंगे। इस अभियान का संचालन आपको करना है।`[१] महर्षि अगस्त्य आततायीयों को भोजन देने की बात करते है, तब चित्रसेन भी क्रोधित होता है ` जिन्होंने छिप-छिपकर निर्मम हत्याएँ की, जिन्होंने चुन चुनकर मुनियों का वध किया ,इनका तो गला घोटने की इच्छा होती है।`[२]

` मुनिकन्या ` का चरित्र चौथे अंक में आखिरी दृश्य में चित्रित हुआ है। अपने पिता की हत्या होने कारण वह दुखी है। किन्तु महर्षि अगस्त्य के पास आकर वह आततायियोंके विरुध्द युध्द में सक्रीय भाग लेना चाहती है। युध्द में विजय प्राप्ति के ऊपरांत वह बहुत प्रसन्न होती है। वह बुध्दिमान भी है। जिन्होंने यह पवित्र कार्य किया है, उनके प्रति श्रध्दा व्यक्त करना वह अपना कर्तव्य समझती है --` इस प्रदेश की त्रस्त जनताकी ओरसे परम कृपालु मुनिवर्य गुरुदेव का अभिनंदन करना है। अपनी भक्ति भाव के श्रध्दा सुमन चढाना है।[३] नाटक अंत में प्रसन्न होकर ` विजय गीत` भी गाती है।

नाटक के चरित्र केवल पौराणिक नहीं है। कुछ पात्र नाटककार की कल्पना की उपज है। अन्य चरित्रों को पौराणिक चरित्र अगस्त्य तथा पौराणिक परिवेश के साथ कुशलता पूर्वक जोडा है। अगस्त्य के चारित्रिक विशेषताओं के आगे अन्य चरित्र दब नहीं गए। चरित्र विकास स्वाभाविक एवं संतुलित हुआ है। नाटक में पात्र बहुत कम है। हरएक पात्र अपनी स्वतंत्र चारित्रिक विशेषताओं लेकर साकार हुए है। जो चरित्र संक्षिप्त है वे भी किसी प्रकार असफल अथवा व्यर्थ नहीं है।

---

१ पं.रामेश्वरदयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.१०२
२ वही वही पृ.१११।
३ वही वही पृ.११४।

(४) संभाषण (कथोपकथन)

नाटक में कथा के प्रस्तुतीकरण के लिए भावाभिव्यक्ति और विचार विनिमय के लिए संभाषण की योजना आवश्यक है । वैसे ही नाटक के पात्रोंका चरित्र चित्रण, उद्देश्य प्राप्ति तथा देशकालका ज्ञान संभाषण या कथोपकथन के माध्यम से प्राप्त होता है ।

दो या दो से अधिक पात्रों का आपस में संभाषण, नाटक में होता है । कतिपय नाटकों में अकेले व्यक्ति का भी संभाषण खास तौर पर पुराने नाटकों में दिखाई देता है । यह भारतीय एवं पश्चिमी नाटकों में मिलता है । अंग्रेजी में इसे Soliloqui या Monologue याने आत्मगत भाषण कहा जाता है ।

संस्कृत नाट्याचार्योंने मुख्यत: रूपक के तीन तत्व ` वस्तु ,नेता और रस स्वीकार किये है । सर्वप्रथम भरतमुनि द्वारा` श्लेष,प्रसाद,समता,माधुर्य,सौकुमार्य, अर्थ,शक्ति,उदारता और कांति काव्य के गुणों का वर्णन किया गया है ।[१] यही गुण संवाद योजना में भी अपेक्षित है ।` वस्तु भेद के अंतर्गत सर्वश्राव्य, अश्राव्य और नियत श्राव्य आदि को नाम करण करके संवाद को धनंजय ने समाविष्ट किया है । ` [२]

धनंजय के अनुसार नियत श्राव्य रूपक में कुछ ऐसा अंश होता है जो किसी किसी को या सबको सुनाने योग्य नहीं,कुछ व्यक्तियों को ही सुनना अभीष्ट है, उसे नियतश्रव्य कहते है । अश्राव्य रूपक में कुछ अंश किसी भी पात्र के सुनने योग्य नहीं होता,वह अश्राव्य कहलाता है । सर्वश्राव्य को प्रकाश कहा है और अश्राव्य को स्वगत कथन ।[३]

---

१ भरतमुनि - नाट्यशास्त्र - १६ । ९७ ।

२ धनंजय - दशरूपक - २ । ६३ ।

३ वही वही १ । ६४ ।

संस्कृत आचार्योंने संवाद को रूपक का अलग तत्व स्वीकार न करके अप्रत्यक्ष रूप से संवाद के लक्षणों का विवेचन किया है। वैसे ही `ग्रीक नाट्य-शास्त्रीय परंपरा में संवाद योजना को ट्रेजेडी के भिन्न तत्व के रूप में स्वीकृति नहीं मिली, बल्कि अरस्तू ने विचार तत्व के अंतर्गत इसकी ओर संकेत मात्र किया है। इसके अंतर्गत ऐसा प्रत्येक प्रभाव आ जाता है। जो वाणी द्वारा उत्पन्न होता है।`[१]

आधुनिक पाश्चात्य नाट्य विचारकों ने संवाद को नाटक का एक महत्वपूर्ण तत्व स्वीकार कर कहा है कि व्यापार कथावस्तु और संघर्ष को प्रस्तुत करनेका एकमात्र साधन है। यह पात्रोंकी भावनाओं के विकास एवं परिवर्तनशीलता की लगातार गति को प्रकट करने की सक्रिय भाषा है।`[२] संवाद के बारेमें दशरथ ओझा के विचार है --` नाटक के संवाद तीन कार्य एक साथ करते हैं। नाटक की कथावस्तु को अग्रेसर करना, दूसरा कार्य पात्रों के चरित्र विकास पर प्रकाश डालना तथा तीसरा कार्य नाटककार के कार्य की प्रगति दिखाना।`[३] नाटक में संवाद और व्यापार का परस्पर संबंध है। कही व्यापार संवाद के लिए नियोजित होता है और कही संवाद व्यापार प्रसार के लिए होता है।

सामान्य वार्तालाप और संवाद में अंतर होता है। संवाद नाटककार की प्रतिभा की उपज होती है। `एक अच्छा नाटककार अपनी संवाद रचना में अंतर्निहित अर्थो और अभिप्रायों का, वक्रता, ध्वनि, व्यंजना और अभिव्यक्ति के अन्य कौशल्यों के साथ कुछ ऐसा प्रयोग करता है कि संवाद कोई सामान्य वार्तालाप न रहकर विशिष्ठ सर्जनात्मक स्वरूप धारण कर लेता है।`[४]

---

१ [illegible]

२ वही [illegible]

३ डॉ.दशरथ ओझा - नाट्य निर्बंध -- पृ.७८।

४ डॉ.गोविंद चातक - नाट्य भाषा - पृ.६०।

संवाद की भाषा वैयक्तिक होती है। क्योंकि नाटक में बोलने वाला अपना संवाद स्वयं सुन भी सकता है। इस क्रिया में वक्ताका जनता पर या श्रोताओं पर जो प्रभाव पडता है,वही प्रभाव उसीपर पडता है। ` संवाद में व्यक्तिके भाव और विचार उसके बोलने में व्यक्त होते हैं। बोलना अपने आपको मुखरित करना है। बोलने के साथ उच्चारण की प्रक्रिया जुडी है। यह आत्मचेतना का रूप है। [१]

नाट्य विकास के प्रारंभ में स्वगत भाषण को विशेष स्थान था। पात्रों की भावना,आत्मपीडा,और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए प्राय: स्वगत संवाद की योजना की जाती थी। इस सम्बन्ध में ` लक्ष्मीनारायण मिश्र के विचार है कि ` मैंने स्वगत की प्रणाली को अस्वाभाविक समझकर छोड दिया है। पात्रों की भीतरी भावनाओं और प्रवृत्तियोंको व्यक्त करने में जितना सहायक मूक अभिनय होता है,उतना स्वगत नहीं। [२]

इसी प्रकार की विचार धारणा दशरथ ओझा की भी है, ` स्वगतोक्ति की व्यवस्था प्राचीन नाटकों में प्राय: मिलती है। आधुनिक नाटकों में इसे अनावश्यक ही नहीं दोष समझा जाता है[३]। आगे चलकर ओझा जी यह भी मान्य करते है कि यह तो निर्विवाद है,कि स्वगत भाषण का प्रयोग कलाकार की विवशताका सूचक है। `[४] किन्तु नाटक में ऐसे कुछ प्रसंग होते है,जहाँ पर स्वगत की आवश्यक्ता होती है। अत्यधिक हर्ष या विवशता के कारण स्वगत संभाषण करता है।

आधुनिक हिन्दी नाटक में संवाद या कथोपकथन प्राणतत्व के रूपमें रहता है। संवाद रंगमंच को प्रभावशाली बनानेका साधन,संवाद ही है। संवाद के कारण दर्शकोंका मनोरंजन ही नहीं,बल्कि नाटककार के उद्देश्य की पूर्ति भी होती है।

---

१ रामल बोरा - हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ.५४।

२ लक्ष्मीनारायण मिश्र - मुक्तिका रहस्य - पृ.२६।

३ डॉ.दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक - उद्भव और विकास - पृ.२६१।

४ वही वही वही पृ.२६३।

'अगस्त्य' नाटक में संवाद या संभाषण --

१) संभाषण की रोचकता --

इस नाटक में संभाषण संक्षिप्त, मार्मिक तथा रुचिपूर्ण बन गये हैं । जैसे

'लोपामुद्रा -- समझी ऋषिवर । आप आर्य जाति के पुरोहित, आर्य जातिके संगठक, मंत्र द्रष्टा ऋषि । क्षमा करें । मैं तो आपको मानव समझाकर इस सरिताके नीरव तटपर चली आयी थी । किन्तु....

'अगस्त्य' — किन्तु क्या ? रुक क्यों गई ?

'लोपामुद्रा — अब मेरी बारी है । संकोच ...

'अगस्त्य' — संकोच ? कैसा संकोच ? संकोच क्यों ?

'लोपामुद्रा' - संकोच प्रकृति की सहज देन है । मेरी इसपर श्रध्दा है ।'[१]

१) संभाषण की पात्रानुकूलता --

प्रस्तुत नाटक में संभाषण प्राय: पात्रानुकूल हुए है । नाटक के पात्रोंकी भावाभिव्यक्तिकी सुन्दर शब्दोंद्वारा व्यंजना की है । जैसे --

मृगा — देवी । महर्षि आश्रम में नहीं है । जयंत कह रहा है, कि वे नदी की ओर गए हैं ।

रोहिणी — आर्ये । आप विलम्ब न करें । महर्षि को सम्हालें । मुझे भय लगता है ।

लोपामुद्रा — मैं प्रयत्न करूंगी । '[२]

' पात्रानुकूल एवं भावानुकूल कथोपकथन नाटक की सफलता में योगदान देते है ।'[३]

---

१ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.२३ ।

२ वही वही पृ.३५ ।

३ ~~शिवराम यादव - मोहन राकेश के नाटक - पृ.१४८~~ ।

३) संभाषण की दार्शनिकता --

' अगस्त्य' आर्य ऋषि, मंत्रदृष्टा तथा आर्योंका पुरोहित होने के कारण ज्ञानी है। लोपामुद्रा ने भी स्थान स्थान जाकर ज्ञान प्राप्त किया है। उसकी दार्शनिक मीमांसा के कारण संभाषण में भी दार्शनिकता आयी है। जैसे --

अगस्त्य - विश्वरथ और उग्र स्वस्थ युवक और वासनाप्रिय युवती। उनके परिणय को तुम संस्कृति की विशालता समझते हो। और उसके प्रति सहानुभूति दिखाते हो।

लोपामुद्रा - जो सनातन है, जो स्वाभाविक है, उसकी उपेक्षा कोई कब तक कर सकता है ? सत्य छोड़कर कोई संस्कृति कब तक टिकेगी ?

अगस्त्य - क्या अर्थ ? तुम संयम का परिहास कर रही हो, लोपा। क्या संयम का कोई स्थान नहीं।[१]

प्रस्तुत नाटक उद्देश्य प्रधान होने के कारण संभाषणों में चिंतनात्मकता भी आयी है।

लोपामुद्रा - मानवोंकी अनंत कलहका मूल इस बात में ही है, कि वह किसी वस्तु या घटना को केवल अपनी ही दृष्टि से देखता है, अपने ही नाप से नापता है, सबसे बड़ी विभ्रांति तो यह है कि वह अपने ही दृष्टिकोण को ठीक समझता है। यही अहम् सारे हिंसा तांडवों का मूल है। '[२]

४) संभाषण की काव्यात्मकता --

नाटक में केवल तत्व चिंतन और दार्शनिक विचारों की भरमार नहीं। उसमें काव्यात्मकता भी उभर आयी है, जिससे संभाषण भी काव्यात्मक बन गये हैं, जैसे --

---

१ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.४१।

२ वही वही पृ.५२।

लोपामुद्रा — नाथ मेरे ....

अगस्त्य — निशा बीत चली है। प्रभात आ रहा है और उसके साथ आ रहा है, नया पथ, नया ध्येय और नया जीवन ...

लोपामुद्रा— आप तो भविष्य के प्रेमी बन गए। रात्रि के ये नीरव प्रहर, नीले नभमें मौन तारिकाएँ। अच्छा। अब मैं चलती हूँ।

अगस्त्य — जाती हो ? अब मुझे छोडकर कहाँ,

लोपामुद्रा — मैं जाती हूँ। नहीं, तो आप यह न कहने लगे।.... `नीरव निशीथ का यह मादक वेला। सरिताका यह निर्जन तट और एक अनुपम युवतीका विभ्रम विलास। `[१]

५) संभाषण की गीतमयता --

शैलीगत प्रभाव बढाने के लिए नाटककार ने गीत शैली का भी प्रयोग किया है। जैसे --

अगस्त्य — तुम्हारी वाणी कितनी मधुर है, प्रभात के कलरव जैसी। अब मैं कभी भी कलरव सुन सकूँगा।

लोपामुद्रा — (पुलकित होकर गाती है।)[२]

मुनिकन्या — गाती है

विजयको करने चले वरण

धरती तो अपना आँगन है[३]

६) व्यंग्यात्मक संभाषण --

कालेयकोंका अत्याचार बढता ही जा रहा है, यह वार्ता जनपद नायक चित्रसेन अगस्त्य को बताता है। तब व्यंग्यपूर्ण स्वरों में अगस्त्य पुछते है --

अगस्त्य सुना है। और तुम मौन हो। क्या तुम्हारी शिराओं में अब वह रक्त प्रवाहित नहीं है जो अत्याचार को देखकर उबल पडता है ? प्राणोंका लोभ करके पुरूष कहाँ ठहरेगा ?[४]

---

१ पं. पामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.४५।
२ वही वही पृ.४६।
३ वही वही पृ.११५।
४ वही वही पृ.९६।

७) अर्थगर्भ वाक्य --

कथोपकथन की एक और विशेषता है अंर्तवक्ता, जिससे दर्शक की बौध्दिकता को चालना मिलती है। शिखर यात्रापर लोपामुद्रा शिष्य तोलक के साथ जाती है। यह बात अगस्त्य को अनुचित लगती है।

अगस्त्य — तोलक तो साथ था। तुम जल विहार कर सकी, मुझे इसीमें सन्तोष है। किन्तु तुम इधर अकेली क्यों आई ? तोलक के अलावा किसी और को भी साथ ले जाती। किसी को कुछ कहने का अवसर ....

लोपामुद्रा — क्या ? क्या कहनेका ? आपका आशय मैं समझी नहीं।

अगस्त्य — तुम नारी होकर नहीं समझी यह कैसे हो सकता है। तुम समझ गई हो। तुम्हारा यों चकित होना, उसका प्रमाण है।[१]

८) संभाषण की सूक्तिमयता --

दार्शनिक चिंतन की विवेचना करते समय नाटककार ने सूक्तिमय वाक्यों की रचना की है, जो स्वाभाविक है और नाटक की प्रभावात्मकता बढ गयी है।

अगस्त्य — वंचक किसी दूसरे को उतना नहीं ठगता जितना स्वयंको ठगता है। नेत्र सम्मुख देखने के लिए सामने बनाये गये हैं, पीछे देखने के लिए नहीं।[२]

९) संभाषण की संक्षिप्तता --

संभाषण छोटे होने से उसकी रोचकता, क्षिप्रता बढ जाती है।

वृक — यह कैसे, हुआ गुरूदेव। कैसे हुआ ? मैं क्या देख रहा हूँ ?

अगस्त्य — वत्स वृक।

वृक — गुरूदेव। गुरूदेव। आँखे खोलिएँ।

---

१ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.८३।

२ वही वही पृ.७५।

अगस्त्य – लोपा । मेरी लोपा । यह तुम्हारा ही स्पर्श है । शीतल मृदुल ।

वृक – गुरुदेव । लोपा देवी कहाँ । यह जलका छींटा तो मैंने मारा है । मैंने मारा है ।[१]

नाटक के पात्रों की मानसिक संघर्ष की अभिव्यक्ति के लिए स्वगत कथन एक सफल माध्यम है । इस नाटक में स्वगत कथन की भरमार नहीं । केवल एक दृश्यों में ही स्वगत कथन का प्रयोग किया है । जैसे --

अगस्त्य – (स्वगत) इन आततायी कालेयकों को क्या सूझा है ? वेदज्ञ ब्राह्मणों और ऋषियों मुनियों की इस प्रकार हत्याएँ कर कर क्या ये नृशंस राक्षस ज्ञान के दीपको ही बुझा देना चाहते है ?[२]

चूँकि नाटक दृश्यकाव्य है और इसलिए अभिनेयता उसका आत्मा है , इस कारण नाटक में संभाषण बिलकुल उचित प्रसंगानुकूल तथा संक्षिप्त होने चाहिए, क्योंकि व्यावहारिक जीवन में बोलते समय हम इसी प्रकारके भाषा का प्रयोग करते हैं । उपन्यास,कहानी जैसी साहित्य विधाओं में लम्बे वाक्य चल सकते हैं ।

---

१ पं.रामेश्वर दयाल दुबे – अगस्त्य – पृ.८६ ।

२ वही वही पृ.९५ ।

(५) देशकाल, वातावरण --

नाटक की कथा की वास्तविकता के लिए उस काल की संस्कृति, सभ्यता, जीवन स्तर तथा वेश-भूषा का चित्रण नाटककार के लिए अत्यंत आवश्यक रहा है।

आचार्य भरत मुनि ने देश-काल, वातावरण का प्रत्यक्ष रूपसे वर्णन नहीं किया, बल्कि नाट्य-प्रवृत्तियों के संदर्भ में इसकी व्याख्या की है। ' नाटक की प्रवृत्तियाँ अनेक देशों की वेश, भाषा, आचार का उचित रीति से वर्णन करती है। इन्होंने अवन्ती, दाक्षिणात्य, पांचाली, मध्यमा और मागधी आदि प्रवृत्तियाँ मानी है।' [१]

नाटकीय प्रवृत्तियोंकी व्याख्या करते हुए धनंजय ने इस प्रकार संकेत किया है --' देश और काल के अनुसार नायक की भिन्न भिन्न भाषा, वेशभूषा और क्रिया प्रवृत्ति कहलाती है। इनका ज्ञान नाट्यकार दृश्यमान जगत से प्राप्त कर सकता है कि किस देश में कैसी भाषा वेश, क्रिया व चेष्टा पाई जाती है।' [२]

इस प्रकार संस्कृत नाट्यचार्योने सीमित रूपमें भाषा, वेशभूषा, स्थान और समय का विचार नाटक में किया है। धीरेन्द्र वर्मा ने इस बारे में स्पष्ट कहा है ' संस्कृत नाट्याचार्योने भी समय, स्थान और कार्य की एकतापर अपने ढंग से विचार किया है।' [३]

डॉ. हेमंत ने स्थल एवं काल की अन्विति पर विचार किया है --' अति दीर्घकाल संपाद्य घटना सकल नाटक में अल्पकाल के मध्य में वर्णन करना यद्यपि दूषणावह नहीं है, तथापि नाटक में देशगत और कालगत वैलक्षण्य वर्णन करना अतिशय अनुचित है।' [४] कार्य एवं प्रभाव की अन्विति की उन्होंने सिध्दांत

---

१ भरतमुनि - नाट्यशास्त्र - ६ । २६-२७ ।

२ धनंजय - दशरूपक - २ - २६३ ।

३ धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य कोश - पृ.८४६ ।

४ डॉ. निर्मला हेमंत - आ.हि.नाट्यकारोंके नाट्य सिध्दांत - पृ.६७ ।

रूप में चर्चा नहीं की है ।

गोविंद त्रिगुणायत ने देशकाल संबंधी विस्तृत विवेचन किया है । उनके विचार इस प्रकार हैं देशकाल के अंतर्गत नाटक में चित्रित युग विशेष सामाजिक, राजनीतिक,धार्मिक,आर्थिक आदि परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए । इस विश्लेषण से नाटक के वास्तविक स्वरूप को समझ सकते हैं ।`[1]

देशकाल ,वातावरण के बारे में धीरेन्द्र वर्मा ने केवळ स्थान,समय और कार्य की अन्वती पर ही विचार नहीं किया है, बल्कि कथा के अनुकूल वातावरण के लिए सूक्ष्मतासे विचार किया है ।` देशकाल के अंतर्गत केवळ, स्थान और समय ही नहीं, रीति-प्रथा,रहन सहन का ढंग,पात्रोंकी वेशभूषा, उनके शिष्टाचार,आचार ,व्यवहार,विचार,चिंतन, भाषाशैली तथा कथा की प्राकृतिक पृष्ठभूमि आदि सभी बातें आ जाती हैं,जो कथाको स्वाभाविक वातावरण प्रदान करती है ।`[2]

संकलन-त्रय के बारेमें उपेन्द्रनाथ अश्क के विचार -` संकलन - त्रय,अर्थात् समय,स्थान,और कार्य-व्यापार का संकलन आधुनिक नाटक का प्रमुख गुण है ।`[3]

अन्विति - त्रय को निर्वाह` अश्क` जी आधुनिक नाटक की प्रमुख आवश्यक्ता मानते हैं ।

श्री लक्ष्मीनारायण लाल केवळ प्रभावान्विति को नाटक की अनिवार्यता मानते है ।` बिना इसके सब नियमों और तत्वोंसे संगठित होते हुए भी निष्प्राण है । पर इस एकताका यह अर्थ नहीं है, कि समूचे ड्रामा में केवळ एक ही भाव और एक सा ही सब आदि से अन्त तक हो । बल्कि महत्वपूर्ण ड्रामों में अनेक भाव विचारोंके बीच से इसका एक आधारभूत भाव,इसकी एक अपनी दृष्टि उजागर होती है ।`[4]

---

१ गोविंद त्रिगुणायत - शास्त्रिय समीक्षा के सिध्दांत - पृ.२२७ ।

२ संपादक धीरेन्द्र वर्मा- हिन्दी साहित्य कोश - पृ.३७३ ।

३ उपेन्द्रनाथ अश्क - अलग अलग रास्ते,भूमिका, पृ.८ ।

४ डॉ.निर्मला हेमंत - आधुनिक हिन्दी नाट्यकारों के नाट्य सिध्दांत - में लक्ष्मीनारायण के नाट्य सिध्दांत - पृ.४४४ ।

देश काल,वातावरण से कथा में वास्तविकता आती है, वैसे ही पात्रोंमें स्वाभाविकता,सजीवता आती है। देशकाल का ठीक ठीक विवरण न होने से नाटक में अस्वाभाविकता का दोष आता है। कई बार वह हास्यास्पद लगता है। धार्मिक तथा पौराणिक नाटक के देश-काल के बारेमें नाटककार को विशेष जागरूक रहना पड़ता है। कथा,पात्र-स्वभाव,परिवेश,वेशभूषा,भाषा आदि के बारेमें उतनी भिन्नता नहीं रहती जितनी अन्य विषय के नाटक - कारों को रहती है। ` धार्मिक-पौराणिक परिवेश,भाषा किसी वृत्त विशेष में विहित मूलभाव आदि ऐसे कुछ बन्धन पौराणिक नाटकोंमें हो जाते हैं, जिनके कारण देशकाल का ठीक ठीक निरूपण कर पाना पौराणिक नाटकों में असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है।` [१]

` अगस्त्य` नाटक में देशकाल , वातावरण --

` अगस्त्य` पौराणिक नाटक होने के कारण वातावरण के अंतर्गत कथा के अनुकूल परिवेश, रहन सहन,रीति-प्रथा,पात्रों के वेशभूषा,उनके आचार - विचार,व्यवहार,भाषा शैली तथा प्राकृतिक पृष्ठभूमिका विचार किया है।

नाटक में पात्रों के व्यक्तित्व उनकी वेशभूषा,देशकाल संबंधी योग्य सूचनाएँ दी हैं। जिस से नाटक में वास्तविकता आ गई है। महर्षि अगस्त्य के वेशभूषा संबंधी बताया है,` महर्षि अगस्त्य एक शिलापर पश्चिमाभिमुख बैठे हैं। वर्ण गौर,शरीर ऊँचा पूरा,भरा हुआ। नेत्र और नासिका दोनों प्रभावशाली। नीचे के अंगपर अधोवस्त्र धारण किये हुए। दाहिने कन्धेपर उसी प्रकारका उत्तरीय है। बाएँ कन्धेपर मोटे सूत का यज्ञोपवीत सुशोभित है।` [२]

---

१ डॉ.धर्मदेव तिवारी - हिन्दी और असमी के पौराणिक नाटक - पृ.८७।

२ पं.रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.२१।

नाटक की कथावस्तु के अनुकूल वेदकालीन लोगों का रहन - सहन, विचार-आचार, धर्म, राजनीतिक परिस्थिति तथा प्रथा का यथार्थ चित्रण किया है। समाज में विवाह के लिए पुरूषोंका सौन्दर्य और धन नहीं देखा जाताथा, किन्तु उनका बल, पराक्रम, तप देखा जाता था। `विदर्भ राज, अगस्त्य के तपोबल, स्वाभिमानी स्वभाव एवं अनुपम व्यक्तित्व की कथाएँ सुन चुके थे, उनके दरिद्र, अकिंचन एवं कुरूप आदि होनेपर भी लोपामुद्रा को सौंप देना उन्होंने उचित समझा।`[१]

मिश्र विवाह - आर्य और अनार्यों में निषिध्द माने जाते थे। आर्य जाति के लिए कलंक, घोर पाप समझा जाता था। `आर्य जातिका भविष्य क्या कलंक की कालिमासे लिखा जाएगा।`[२]

प्राचीन कालके ऋषि मुनियों के पास विचारों का असीम धन था। नाटक के वातावरण की वास्तविकता इन दार्शनिक चिंतन के कारण अधिक स्पष्ट हो जाता है। `संस्कृतिका अर्थ तो सहानुभूति और विशालता है।`[३] शिशु सृष्टि का सर्वोत्तम सुमन है। पाप-पुण्य, दुख-सुख, द्वन्द्वों से भरे रहनेवाला शिशु हमारे संपूर्ण जीवन की भूमिका है[४] `वंचक किसी दूसरे से उतना नहीं ठगता, जितना स्वयं को ठगता है।`[५]

प्राचीन सांस्कृतिक वातावरण उपस्थित करने के लिए प्राचीन संस्कृत संबोधन का प्रयोग किया है। जैसे` वत्स वृक, आर्य देवी, राजन`[६] और अन्य

---

१ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - एक निबंध - पृ.७।
२ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.२७।
३ वही वही पृ.५।
४ वही वही पृ.७५।
५ वही वही पृ.७५।
६ वही वही पृ.६८।

संस्कृत शब्दों का भी प्रचुर मात्रामें प्रयोग किया है -- उपत्यकाएँ, गिरि-शृंग, क्षेत्रप नृपति, '[१]

नाटक में कार्य संकलन पर पूर्ण ध्यान दिया है। नाटक में प्रमुख घटना महर्षि अगस्त्य का सांस्कृतिक अभियान उत्तर से दक्षिण के ओर ले जाना है, इस घटनासे अन्य घटनाएँ संलग्न हैं। कालेयकोंका आक्रमण, विश्वरथ का विवाह, विन्ध्यपाल से संधि, समुद्रपर विजय प्राप्त करना आदि घटनाएँ प्रमुख घटना की पोषिका है।

अरस्तू के स्थान संकलन के अनुसार नाटककार को अपने क्रिया व्यापार किसी ऐसे स्थान में नियोजित नही करने चाहिए जहाँ पर निर्दिष्ट समय में सभी पात्र अपने व्यापारों के प्रदर्शन में समर्थ हो।'[२] आधुनिक हिन्दी नाटकों में स्थान संकलन का पालन करना नाटककारोंने श्रेयस्कर नहीं माना है। नाटक में दूर दूर के स्थानों का चुनाव किया है। नाटक के द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य में विदिशा की अतिथि शाला का प्रांगण है[3] तो दूसरा स्थान विन्ध्य शिखर के समतल भूमि[४]।

नाटक में उत्तर का देश, विन्ध्य पर्वत, कुंज पर्वत, मलय पर्वत, वेगवती नदी का तट, समुद्र का किनारा इत्यादि स्थानों का वर्णन है। फिर भी नाटक में प्रभावान्विति का अभाव नहीं आया है।

नाटक में समय संकलन का भी पालन नहीं किया है। अरस्तु के अनुसार 'नाटक की घटना सूर्य के एक संक्रमण मात्र के समय के अंतर्गत ही सीमित रहनी चाहिए।'[५]

---

१ पं.रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.५५।

२ गोविंद त्रिगुणायत - शास्त्रीय समीक्षा के सिध्दांत - पृ.२२०।

३ पं.रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.४९।

४ वही वही पृ.५९।

५ गोविंद त्रिगुणायत - शास्त्रीय समीक्षा के सिध्दांत - पृ.२२०।

नाटक में विश्वरथ का विन्ध्याटवी में दस्युयोंके युध्द में बार बार असफलता,आखिर विजय प्राप्त,उसका विवाह, पुत्र-प्राप्ति,नाविक कला का विकास, कालेयकों का आक्रमण,उनके अत्याचारोंका विनाश,समुद्रपर विजय इत्यादि घटनाएँ कई सालोंकी ही है। संकलन त्रय के संबंध में डॉ.निर्मला हेमंत के विचार है --` वस्तुत: संकलन त्रय की पुकार उस काल की पुकार है जब रंगमंच के निर्माण में कठिनाइयाँ रहती थीं। आज केवळ कार्य व्यापार की एकता अनिवार्य है।` १

इस नाटक में स्थान एवं समय की अन्विति के कठोरतापूर्वक पालन न करके भी कार्य संकलन के कारण नाटक सफल एवं प्रभावकारी बन गया है। तथा देश काल, परिस्थितियाँ का अंकन इतना सुस्पष्ट हुआ है कि वेदकालिन जगत देखने का आनंद प्राप्त होता है।

---

१ सं.डॉ.निर्मला हेमंत - आधुनिक हिन्दी नाट्यकारों के नाट्य सिध्दांत -- पृ.४२२।

६) (प्रयोजन)

रचनाकार की नाट्य रचना में कोई न कोई उद्देश्य रहता है । चाहे वह आत्मिक संतोष के लिए लिखता हो फिर भी कोई विचार या उपदेश समाज को देना चाहता है ।

संस्कृत नाटयाचार्योंने यश,धन,कीर्ति आदि काव्य का और इस कारण नाटक का भी उद्देश्य माना है । लोकानुरंजनके साथ साथ लोकमंगलका संदेश देना जीवन की व्याख्या करना विभिन्न प्रकारकी समस्याओं का समाधान करना आदि नाटक के उद्देश्य में आते हैं । वैसे ही उद्देश्य को रस तत्व के अंतर्गत समाहित किया है । भारतीय दृष्टिकोण से नाटक का मूल उद्देश्य रस निष्पति है । भरत के अनुसार नाटक की परिणाति रस ही है ।[१]

आचार्य मम्मटने अन्य काव्य - प्रयोजनों की तुलना में आनंद को ' सकलप्रयोजन मौलिभूत ' कहा है ।[२]

' भारतेन्दुने इस परम्पराविहित प्रयोजन को नाटक की सिध्दि के रूप में मान्यता देने के अतिरिक्त लोकसंस्कार,भक्ति,देश-वत्सलता आदि नाट्योद्देयों की भी चर्चा की हैं । उन्होंने बाह्य प्रयोजनों (यश,धन आदि) को मान्यता नहीं दी है । '[३] उन्होंने स्पष्टत: उल्लेख किया है कि नाटक के प्रेक्षाण से दर्शकोंको आनंद - प्राप्ति होनी चाहिए ।

प्रसादजी ने भी बाह्य प्रयोजनो की पूर्णतया उपेक्षा की है । आंतरिक प्रयोजनों में भी आनंद एवं लोकमंगलकी स्वीकृति दी है । उनका कथन है -- ' नाटक में सहृदय को एक साथ आह्लादित एवं शिक्षित करने की तीव्र क्षमता है । चाक्षुष - प्रत्यक्ष का विषय होने के कारण उसमें निहित शिक्षा अथवा उपदेश सहजबोध्य होता है । '[४]

---

१ भरत - नाट्यशास्त्र - पृ.६।१०।

२ डॉ.निर्मला हेमंत - आ.हि.नाट्यकारोंके नाट्य सिध्दांत - पृ.५४ ।

३ वही वही पृ.५४ ।

४ डॉ.निर्मला हेमंत - आ.हि.नाटयकारोंके नाट्य सिध्दांत - पृ.१६१ ।

इसके अतिरिक्त नाटक के अन्य भी उद्देश्य हिन्दी साहित्यकार मानते हैं। जैसे -- धीरन्द्र वर्मा का कथन है --` भारतीय नाटकोंका उद्देश्य अर्थ,धर्म या काम की प्राप्ति है,अर्थात नाटक में जीवन के आदर्शोंकी व्याख्या होनी चाहिए, साथ ही वह सामाजिकोंको आनंद देनेवाला भी होना चाहिए। दुष्टोंका दण्डित होना और सज्जनोंका उपकार ही इन नाटकोंका चरम लक्ष्य रहा है।`[1]

डॉ.नगरन्द्र के विचार है --` नाटकोंका उद्देश्य जनता को कुछ शिक्षा देना होता है।`[2]

नाटक में मानव जीवन की विविध समस्याएँ होती हैं, जिन्हें समझने, उनसे जुझने की प्रेरणा प्राप्त होती है। नाटक में मानव के सद्विवेक को विकसित करने की शक्ति होती है। सद्विवेक द्वारा मानव के आत्मोत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त होता है। नाटक में आनंद एवं नैतिक शिक्षा मूल प्रयोजन माना है। पौराणिक नाटकोंका प्रयोजन इससे भिन्न नहीं। उसमें धार्मिक स्तर ऊँचा करनेका मुख्य उद्देश्य अवश्य रहता है।

` आजके पौराणिक नाटक भी युग समस्याके समाधान का प्रयास करते है। समाज का नैतिक तथा धार्मिक स्तर ऊँचा करना चाहते है।`[3] पौराणिक नाटक धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा के लिए लिखे जाते है। इसके साथ उससे कलात्मक आनन्दानुभूति भी मिलनी चाहिए।

डॉ.देवर्षि सनाढय पौराणिक नाटक के उद्देश्य के बारेमें कहते है, ` मानव को श्रध्दा,प्रेम,कर्तव्यपालन आदि उच्च मानव धर्मोंको स्वीकार कर शांति और व्यवस्था के मार्गपर चलनेकी कलात्मक,आनन्ददायक,मोहक प्रेरणा देना, पौराणिक नाटकोंके प्रणयन का कारण है।`[4]

---

१ सं.धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्यकोश,पृ.४१० ।

२ डॉ.नगेन्द्र आधुनिक हिन्दी नाटक -पृ.४९ ।

३ डॉ.दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास - पृ.५३२ ।

४ डॉ.देवर्षि सनाढय - हिन्दी के पौराणिक नाटक - पृ.८-९ ।

` अगस्त्य` नाटक का प्रयोजन --

महर्षि अगस्त्य भारतीय संस्कृति के महान् प्रतीक हैं। तप और त्याग से श्रेष्ठ बना हुआ क्षात्रिय गुणों का अनूठा समन्वय ही उनके व्यक्तित्व का परिचायक है। भारतीय संस्कृति के प्रचार और प्रसार ये आपका महत्वपूर्ण योगदान है। ` भारतीय ऋषियों में वैसे तो व्यास,वशिष्ठ,विश्वामित्र, कपिल आदि अत्यंत श्रेष्ठ माने जाते हैं, परन्तु यदि संस्कृति के प्रसार-इतिहास की दृष्टिसे देखा जाय तो अगस्त्य का सभी ऋषियों में सबसे महत्व का स्थान है।`[१]

आज महर्षि अगस्त्य के सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्यो के बारे में लोग अनभिज्ञ हैं। उनके कार्यो से प्रभावित होकर पं.रामेश्वर दयाल दुबे जी ने यह नाटक लिखा है। इस नाटक में पौराणिक गाथाओं में नई अर्थवत्ता भरी हुई है और अगस्त्य की जो प्रतिमा यहाँ उरेही गई है, वह एक नई सांस्कृतिक दीप्ति,एक नई उजास से आलोकित है, जो आज के `भावात्मक एकता` की पुनर्निर्माण- वेला में और भी अधिक माननीय और स्पृहनीय है।

` अगस्त्य` नाटक के बारेमें डॉ.माधव सोनटक्के कहते हैं --` रामेश्वर दयाल दुबे जी ने वर्तमान विषय सामाजिक स्थिति को परिवर्तन लानेका आह्वान किया है। यहाँ अगस्त्य सामाजिक समताके लिए कार्यरत समाज सुधारक के रूप में अंकित हुआ है। सामाजिक समता बल के सहारे नहीं भावात्मक ऐक्य द्वारा प्रस्थापित हो सकती है।`[२]

पं.रामेश्वर दयाल दुबे जी को भारतीय संस्कृति के प्रति अभिमान है। अत: भारतीय संस्कृतिका आख्यान करना, दूर दूर के लोगोंतक संस्कृति को पहुँचाना अपना पवित्र कर्तव्य मानते हैं। नाटक में लोपामुद्रा अगस्त्य से कहती है -` यह तत्वदर्शी ऋषियों का ही कर्तव्य है, कि संस्कृति के अर्थ को समय समय पर स्पष्ट

---

१ पं.रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.७।

२ डॉ. माधव सोनटक्के - आधुनिक हिन्दी मराठी नाटक - पृ.५३।

करते रहें । आप जिसे आर्य संस्कृति कहते हैं मैं उसे भारतीय संस्कृति संज्ञासे संबोधित करना चाहती हूँ । संसार उस महाभाग के भी दर्शन करेगा, जो 'भारतीय संस्कृति' को मानव संस्कृति कह कर पुकारेगा ।'[१]

संस्कृति की परिभाषा भी विविधता में एकता की दृष्टि से भावमूलक ऐक्य पर प्रतिष्ठित की गई है । 'भेद से अभेद की ओर, भिन्नता से अभिन्नता की ओर जाना ही संस्कृति है ।[२] 'मानव मानव के बीच की दूरी निकटता में परिणत होती रहना संस्कृति की आधारशिला है ।'[३]

महर्षि अगस्त्य अपने पुराणे (सनातन) विचारों के प्रति अभिमानी थे । किन्तु लोपामुद्रा से प्रेरणा पाकर अपने सनातन विचारों में परिवर्तन लाते हैं । परिवर्तनशीलता ही जीवन है । समाज और संस्कृति दोनों ही गतिशील हैं । गति रुकी, कि दुर्गति स्थान लेती है ।

भारतीय समाज व्यवस्था में आर्य-अनार्य में बहुत बड़ा भेद माना जाता था । वास्तव में यह भेद बाहरी ही है । इसी कारण राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता धोखे में आ जाती है । वास्तव में आर्य और अनार्य में भेद नहीं है । 'आर्य साफ सुधरे घरों में रहते हैं, यज्ञ करते हैं, मन्त्रोचारण से ध्वनित - वायुमंडल में रहकर उच्च जीवन जीते हैं, अनार्य झोपड़ियों में अर्धनग्न रहते हैं, शरीर से काले अनार्य अविकसित वन्य जीवन जीते है । ऊपर का रंग आर्यों जैसा गौर वर्ण भले न हो, परन्तु अनार्यों का रक्त उतनी ही लालिमा लिए होता है, जितना आर्योंका ।'[४]

अगस्त्य के शिष्य विश्वरथ ने शाम्बर कन्या उग्रा से विवाह करके सिध्द किया आर्य और अनार्य में कोई भेद नहीं है । दो हृदयों के मिलन से ही जीवन की यात्रा सफल हो जाती है । विश्वरथ का विवाह सामाजिक समता और एकता का ही द्योतक है और संस्कृति के प्रसार के लिए सहायक हुआ है । अगस्त्य

---

१ पं.रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.
२ वही वही पृ.
३ वही वही पृ.
४ वही वही पृ.३४ ।

कहते हैं -- आर्यश्रेष्ठ विश्वरथ और महाप्रतापी विन्ध्यपाल के बीच में स्थापित होनेवाली स्नेह की यह सलोनी गाँठ कभी न टूटे ।` [१]

`अगस्त्य` नाटक की कथा पुराण तथा रामायण, महाभारत से ली है । कथा परिचित है, किन्तु पौराणिक कथा मूल रूप में न कहकर उसमें से वैज्ञानिक अर्थ निकाल कर आधुनिक रूप दिया है । लोकरंजन के साथ लोकमंगलकी पवित्र भावना इसमें उद्धृत है । धार्मिक और नैतिक शिक्षा देने के साथ साथ साहित्यिक आनन्दानुभूति का उद्देश्य इसमें समाहित है ।

---

१ पं.रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.६९ ।

७) अभिनेयता

नाटक को नाटकत्व प्रदान करनेका श्रेय अभिनेयता को है । अभिनय का अर्थ होता है सम्मुख ले जाना । ' नाट्यशास्त्र ' में अभिनय के बारे में लिखा है --' रूपक के प्रयोग शाखा,भाषण के पूर्व या कथोपकथन के समय पात्र का करावर्तन,अंग,सिर,हाथ,कटि आदि की भंगिमाएँ,उपांग,पलक,नासिका आदि की चेष्टा से युक्त जो प्रक्रिया कवि भावों को सामाजिक के सम्मुख रखता है,उसे अभिनय कहते हैं ।'[१]

अभिनेयता के बारेमें धीरेन्द्र वर्मा के विचार है --' अभिनयति हृदगत भावान् प्रकाशयति' मन के क्रोधादि भाव को प्रकट करनेवाली आंगिक - चेष्टाओंद्वारा किसी विषय अथवा भाव को प्रकट करनेवाली किसी विषय अथवा व्यक्तिका प्रकृत अनुकरण करके प्रदर्शित करने को अभिनय कहते है ।'[२] अभिनय बाह्य कार्य प्रदर्शित करना उतना अभिप्रेत नहीं होगा,प्रस्तुत प्रकृत मन का भाव व्यक्त करना इसका उद्देश्य होता है । इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है -- अंगिक,वाचिक,आहार्य और सात्त्विक । विविध अंगों की प्रक्षेपण प्रक्रिया को अंगिक ,और गीत प्रबंधादि पाठ को वाचिक,भूषणादि की साज-सज्जा को आहार्य और स्वेद,स्तम्भ रोमांचादि को सात्त्विक अभिनय कहते है[३]।

पाश्चात्य नाट्यकला के प्रभाव के कारण आज हिन्दी का नाटक भरतकालीन नाटकोंसे बहुत से बातों से अलग हो गया है । अभिनेयता की मान्यताएँ बदल गयी है । अभिनेय रचना का उद्देश्य रंगमंच पर उसका प्रत्यक्षीकरण करना होता है । दर्शक उसे देखकर आनंद का लाभ करते है । सफल अभिनेय रचना वही होती है, जिसे दर्शक एक बैठक में सरलतासे देख सके । इसीलिए नाटक का संक्षिप्त होना आवश्यक है,जो तीन या चार घण्टो में समाप्त हो जाए । अभिनेय नाटक में भावों का नियोजन इस प्रकार हो जिससे दर्शक सरलतासे तन्मय हो ।

---

१ भरतमुनि - नाट्यशास्त्र - ८।६।७

२ धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य कोश - पृ.४९ ।

३ डॉ.गोविन्द त्रिगुणायत - शास्त्रीय समीक्षाके सिध्दान्त - पृ.२२७ ।

रंग सज्जा, वेशभूषा के बारे में जगदीशचंद्र माथुर के विचार है, ' नाट्याभिनय की सफलता की कसौटी चमत्कारपूर्ण रंगसज्जा या वेशभूषा न होकर सरस एवं स्वाभाविक अभिनय है, निर्देशक यह समझ ले कि नाटक की सफलता सेटिंग्ज और तड़क भड़क पर इतनी निर्भर नहीं करती जितनी अभिनय की उत्कृष्टता पर।'[१] इसलिए अभिनेता की अनुभूति सजग और संवेदनशील होनी चाहिए। ' सफल अभिनेता वही है जो अपने नीजी व्यक्तित्व को भुलाकर पात्र के व्यक्तित्व की सृष्टि कर सकता है।'[२]

अभिनेयता रंगमंच का सब से अधिक जीवंत एवं सशक्त माध्यम है। जिसके द्वारा नाटक दर्शक को प्रभावित करता है।' किसी भी नाटक की अभिनेयता पर दो दृष्टियों से विचार किया जाना चाहिए। एक तो यह कि रंगमंच पर उसकी आदिसे अंत तक सुगमता से प्रदर्शित किया जा सकता है, या यदि उसका अभिनय किया जाए, तो वह दर्शकों को प्रभावित कर सकेगा या नहीं।[३]

' अगस्त्य ' की अभिनेयता --

' अगस्त्य ' पौराणिक नाटक है। इसमें चार अंक है। प्रथम अंक में तीन दृश्य, बाकी के तीन अंकों में दो दो दृश्यों की योजना की है। दृश्य योजना ज्यादा विस्तृत नहीं है। नाटक के अंकों और दृश्यों के विभाजन के संतुलन पर ध्यान दिया है। इस से नाटक की रोचकता बनी रही है। नाटक में दृश्योंकी सजावट कालानुरूप हुई है। दृश्यों की सजावट में विदिशाकी अतिथि शाला का प्रागंण, अगस्त्य के आश्रम के निकट बहनेवाली नदी का तट, कुंज पर्वत पर स्थित महर्षि अगस्त्य का आश्रम आदि का उपयोग किया है। प्रसंगानुरूप दृश्यों की योजना के कारण नाटक में औचित्य और अनुरूपता आयी है।

अभिनेय नाटक में पात्रों की संख्या अधिक तर नहीं होनी चाहिए। इस नाटक में कुल मिला कर पंद्रह पात्र हैं। इनमें से चार पात्र कम करने से नाटक के

१ जगदीशचंद्र माथुर - कोणार्क - (भूमिका) पृ.४।

२ वही - का तारा - परिशिष्ट पृ.१९३।

३ प्रेमनारायण टण्डन - प्रसाद के तीन नाटक - पृ.१८५।

प्रभाव में फर्क नहीं पड़ता । नाटक की कथावस्तु सरल,सुबोध है, दर्शक आसानीसे रस ले सकते हैं ।

` देवी । वह सचमुच एक ऐसा ही प्रश्न है, जिसे हल करना सरल नहीं है । इस उपत्यका के क्षेत्रप शम्बर के निधन के पश्चात् मैंने आशा तो यह की थी कि दक्षिण पथक मार्ग प्रशस्त हो जाएगा ।`[1]

इस प्रकार के दीर्घ कथोपकथन है, जिसमें विचारों की भरमार है । चिंतनात्मक दार्शनिक विचार सामान्य पाठकों के क्लिष्ट हो सकते है । कई स्थानोंपर संवादों की दीर्घता`[2] अवश्य है । जो अभिनेयता की दृष्टि से आपत्तिजनक हो सकते हैं । ऐसे संभाषणों को यदि दो भागों में विभाजित किया जाए तो वे अभिनेय बन सकते है । स्वगतोक्ति की भी भरमार नहीं है, केवल एक दो जगह स्वगत है,जो पात्र के चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करनेमें सहायक हैं ।

कोई भी नाटक अभिनेय की दृष्टिसे तब सफलता प्राप्त करता है,जब उसमें द्वन्द्व या संघर्ष हो । नाटक में बाह्य संघर्ष के साथ साथ आंतरिक संघर्ष भी प्रस्तुत किया है । कालेयकोंका आर्य मुनियों पर आक्रमण,आक्रमण को हटानेके लिए किया गया संघर्ष के साथ अगस्त्य और लोपामुद्रा के विचारों में संघर्ष है । तीसरे अंक में द्वितीय दृश्य में इन दोनों में भावनिक संघर्ष का अंत दिखाया है । नाटक में दो गीतों की प्रसंगानुरूप सुन्दर योजना की है । जिससे नाटक आकर्षक बन गया है । गीत से दर्शकोंका मन अधिक से अधिक आकृष्ट हो जाता है ।` सफल अभिनेय नाटककार ऐसे दुर्बल स्थलोंपर चित्ताकर्षक गीत या नृत्य की योजना कर देता है । जिनसे दर्शक का ऊबा हुआ मन फिरसे रमने लगता है ।[3]

नाटक में लोपामुद्रा की मृत्यु का दृश्य है, जो नाट्यशास्त्र के अनुसार वर्जित है । अगर बदल कर किसी पात्र के मुँह से बात बता दी जा सकती है । ये साधारण दोष होने पर भी प्रस्तुत नाटक अभिनेयता की कसौटीपर खरा उतरता है ।

---

१ पं.रामेश्वरदयाल दुबे -- अगस्त्य - पृ.५५ ।
२ वही वही पृ.३१ ।
३ गोविन्द त्रिगुणायन - शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त - पृ २३० ।

(८) काव्यात्मकता --

नाटक को `दृश्यकाव्य` कहा गया है । संगीत काव्य का एक उपांग है, जो काव्य को अधिक प्रभावशाली बना सकता है । पुराने जमाने में प्राय: नाटक संगीतमय ही हुआ करते थे , गीत, वाद्य और नृत्य - तीनों को मिलकर संगीत कहा जाता है । नाटक में गीत हो सकते है । किंतु उसका होना अनिवार्य नहीं है । आधुनिक हिन्दी नाटकों में तो संगीत और खासकर गीत नही रखे जाते । हां, किसी घटना का प्रभाव बढाने के लिए पर्दे के पीछे या सामने संगीत का प्रयोग किया जाता है । नाटक साहित्य का एक अंग है और इस कारण उस में विविध प्रकार के मानवीय जीवनों की झांकियाँ होती हैं । संस्कृत नाटकों में संगीत का प्रयोग अधिकतर मात्रा में दिखाई देता है ।

` मानव की विविध भावनाओं में लीन व्यक्ति अन्य व्यक्ति के अनुभवों का अहसास नहीं कर सकता । इस लिए प्रत्येक व्यक्तिको आनंद देने में समर्थ शब्दादि विषय, स्वरूप, वाद्य, गान आकर्षक रंगमंच, मनोरंजक किया जाता है, जिससे हृदय हीन व्यक्ति भी सहृदय या रसिक के समान रस का अनुभव ले सकता है ।[१]

सरस अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए नाटक में संगीत का प्रयोग किया जाता है, गीत के लिए भाषा में मधुरिमा एवं प्रसाद आवश्य है । इससे नाटक का सौन्दर्य बढ जाता है । अलंकृत, मुहावरेदार और पात्रों के चरित्र के अनुसार भाषा का होना काव्यात्मकता के लिए जरूरी है ।

---

१ डॉ. दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक उद्भव और विकास - पृ. २७८ ।

पं.रामेश्वर दयाल दुबे जी प्रथम कवि है बाद में नाटककार । नाटक में दो गीत हैं, प्रकृति वर्णन है, कथावस्तु में अनुकूल अधिकांश पात्र ,घटनाएँ कल्पित है । व्यक्तित्वों की रूपरेखाएँ भी कल्पना प्रसुत और नाटककारके रुचि के अनुकूल हैं । भाषा में सूक्तिमयता और संस्कृत निष्ठ शब्दों की प्रचुरता के कारण काव्यात्मकता दृष्टिगोचर होती है । नाटककारकी कल्पना सोद्देश्य है और इसी कारण पाठक को पौराणिक सत्य से अधिक चमत्कृत करती है ।

१) प्रणय भावना --

नाटक में महर्षि अगस्त्य तथा लोपामुद्रा के प्रेम भाव भरे वार्तालाप अनूठे बन पडे है । ` देखो, ना । स्वर्णिम संध्या की यह मादक वेला, सरिता का यह निर्जन तट और एक अनुपम युवतिका विभ्रम विलास` किसी पुरुष की परीक्षा के लिए क्या ये पर्याप्त उपकरण नहीं हैं ? किन्तु ....`[१] ` लोपा ! लोपा ! ऐसा लगता है, जैसे कोई हृदय में अमृत उँडेल रहा हो । एक दिव्य ज्योतिके आगे मेरा अहं,मेरी अहंजन्य मान्यताएँ आत्मसमर्पण कर रही है ।`

२) प्रकृति का चित्रण --

दुबे जी ने नाटक में प्रकृति का चित्रण कुशल चित्रकार के समान किया है । वे प्राकृतिक सुषमा पर अत्यधिक मुग्ध है ।

नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में प्रकृति का सुन्दर चित्र खिंचा है,जो रंग संकेत के लिए उपयुक्त है । ` सामने कगार पर सघन गुल्मोंकी हरीतिया पर स्वर्णिम सान्ध्य घन की आभा पड रही है । गुल्मों के ऊपर आकाश में विविध वर्णोंका मेला-सा लगा है ।`[२]

---

१ पं.रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.२२-४४ ।

२ वही वही पृ.२२ ।

तृतीय अंक के प्रथम दृश्य में प्रात:काल का वर्णन है` रात्रि और दिवस के सन्धि-काल में ही सन्ध्या समयोचित है। लजीली निशा तो कब की अपना मुख छिपा चुकी। भुवन भास्कर के किरण कर कार्य निरत हो चुके है।`[१]

३) स्वभाव वैशिष्टय --

नाटककारने व्यक्ति चित्रण अत्यंत संक्षिप्त शब्दोंमें किन्तु मार्मिकतासे किया है। जिससे उसके संपूर्ण चरित्र का स्वभाव वैशिष्टय का दर्शन होते है - महर्षि अगस्त्य के स्वभाव का महत्वपूर्ण अंग` अहं ` है जिसका वर्णन है -- ` मैं एक ऋषि, मन्त्रदृष्टा ऋषि, तप और त्याग ही जिसका बल है। आर्य जाती की मंगल कामना ही जिसका ध्येय है।` तथा` मैं आर्य जातिका पुरोहित हूँ।`[२]

४) कल्पना प्रसुत घटनाएँ --

जो नाटककार पहले कवि, पीछे नाटककार है उनके नाटकों में कल्पनात्मक घटनाएँ होती है। इस नाटक में विश्वरथ - उग्रा का प्रेम`[३] कालेयकोंका आक्रमण[४] ` नौका निर्माण का काम [५] आर्य नाविकोंका कालेयकोंपर आक्रमण [६] शत्रुओंका आदर करना ` नहीं, वत्स वृक ? पहले कालेयकों को ही भोजन दिया जाए। वैरियोंके प्रति हमारा मृदु व्यवहार प्राय: अनुकूल फल ही देता है। ( शिवमसे ) जाओ, इन कालेयकों को उधर ले जाओ, उन्हें भोजन कराओ।` [७]

इस नाटक के अधिकांश पात्र काल्पनिक है। उनके व्यक्तित्व की रूपरेखाएँ

१	पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य -		पृ.७३।
२	वही	वही	पृ.२२।
३	वही	वही	पृ.३२।
४	वही	वही	पृ.९२।
५	वही	वही	पृ.९४।
६	वही	वही	पृ.१०९।
७	वही	वही	पृ.११२।

मी कल्पना प्रस्तुत है। जिनका संदर्भ पुराण, रामायण, या महाभारत में नहीं मिलता है। नाटककारने अपनी रूचि के अनुसार निर्मित किए हैं। जैसे वृक, विश्वरथ, उग्रा ।

5) दार्शनिक शैली में भावमयता --

इस नाटक में यत्र तत्र दार्शनिक शैली का प्रयोग किया गया है। दार्शनिकता भाषा को जटिल बनाती है। किन्तु दुबे जी ने तत्वचिंतनात्मक विचारोंकी अभिव्यक्ति के लिए भी भावमय शैली का प्रयोग किया है तथा भाषा में क्लिष्टता नहीं आ दी है। दार्शनिक विवेचन के समय सुन्दर सुन्दर उक्तियोंका संग्रह बन गया जिसके कारण भाषा गरिमामय, काव्यात्मक और सौष्ठवपूर्ण बन गयी है। जैसे -- ` असफलता की गोदमें ही क्या सफलता नहीं रहा करती ? विघ्न-बाधाएँ तो सिध्दि-मार्ग की पथ-दर्शिकाएँ कही जाती हैं। संकल्प की दृढता और सतत प्रयत्नशीलता ही उस विजय रथ के दो चक्र हैं, जो सिध्दिके द्वार तक हमें पहुँचाती है। `[1]

` बल प्रयोग में अन्ततोगत्वा विजित और विजयी - ऐसे दो पक्षों का निर्माण होता है, किन्तु जब स्नेहका प्रयोग होता है, तब दोनों ही विजयी बनते है। `[2] ` शंका और संदेह भ्रान्तियों को जन्म देते हैं। फिर विवेकहीन द्वेष हमें पशुत्व तक पहुँचा देता है। `[3]

मानव हृदय की रागात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए भावमय शैलीका प्रयोजन उचित होता है। ` यदि मेरे पास कुबेर की सम्पत्ति होती, तो मैं इस मधुर दृश्यपर सहर्ष न्योछावर कर देती, मैं आज एक स्वर्णिम प्रभात को उभरते हुए देख रही हूँ, विभेदकी प्राचीर को ढहते हुए देख रही हूँ और देख रही हूँ स्नेहकी सुनहली किरणों में प्रेम के पद्मका खिलते हुए। `[4]

---

१ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.५५।
२ वही वही पृ.५७।
३ वही वही पृ.६६।
४ वही वही पृ.६५।

६) सूक्तिमयता --

दुबे जी ने अपने दार्शनिक विचार उद्धृत करते समय सहज स्वाभाविक भाषा के साथ सुन्दर उक्तियाँ का संग्रह करते है। जिससे नाटक में रोचकता आयी है। पाठकों को बोध होता है। ` नेत्र सम्मुख देखने के लिए सामने बनाये गये हैं, पीछे देखनेके लिए नहीं। ` [१] ` वंचक किसी दूसरेको उतना नहीं ठगता जितना स्वयंको ठगता है। ` [२] ` संकोच प्रकृति की सहज देन है। ` [३] ` हृदय मानव की सबसे प्यारी संपत्ति है। ` [४]

७) अलंकृत भाषा --

शिशु और सृष्टि के सम्बन्ध के विचार प्रभावशाली और अलंकृत भाषा का उत्कृष्ट नमुना है -- ` शिशु सृष्टिका सर्वोत्तम सुमन है। पाप - पुण्य, दु:ख - सुख ,द्वन्द्वो से परे रहनेवाला शिशु हमारे संपूर्ण जीवन की भूमिका है। उनकी मधुर मुस्कानमें आगामी प्रभापूर्ण प्रभातोंकी सुन्दर झाँकी झलका करती है। 'यदि बच्चे न होते, सृष्टिका सौन्दर्य अधूरा ही रहता'। ` [५]

८) ओजपूर्ण भाषा शैली --

नाटक में ओजपूर्ण शैली के स्थान स्थान दर्शन होते हैं। ` जिस दिन पुरूष में प्राणोंका लोभ जागृत होगा, पुरूष, पुरूष नहीं रहेगा। कालेयकोंके कुकृत्योंपर क्रोध हमें भी आता है, प्रतिशोध लेनेकी भावनाएँ तीव्र हो जाती है।

---

१ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.७५।
२ वही वही पृ.७५।
३ वही वही पृ.२३।
४ वही वही पृ.१९।
५ वही वही पृ.५०।
६ वही वही पृ.९७।

अगस्त्य नाटक में सहज, सरल भावप्रवण भाषा के नमुने यत्र तत्र हैं संस्कृत प्रचुरता के कारण भाषा में अर्थ गर्भता आयी है। दार्शनिक मीमांसा के चिंतनसे और सूक्तिमयतासे भाषा अधिक प्रौढ बन गयी है। नाटक में पौराणिक सत्य के साथ साथ काल्पनिक घटनाएँ और कल्पना प्रधान पात्रों के कारण अत्यधिक सुन्दर ' दृष्यकाव्य' बन गया है।

९) नाटक की शास्त्रीयता --

भारतीय नाट्याचार्य भरतमुनि के `नाट्यशास्त्र` प्रमाणित ग्रन्थ माना जाता है। भरत मुनि ने इसमें नाटक के बारेमें विस्तृत चर्चा की है। भरत की दृष्टि से नाटक में प्रतिपाद्य वस्तुवृत्त, देश, नायक और रस चारों ही स्थान होने चाहिए।`[१] वस्तु दो प्रकार की हैं, यथा आधिकारिक और प्रासंगिक वस्तु`[२] भरत ने नाट्य वस्तुवृत्त से लिए पाँच अवस्थाओं और पाँच अर्थप्रकृतियों के योग से पाँच संधियों की कल्पना की है।`[३] भरत ने राजा, अमात्य, सेनापति, विदूषक, श्रेष्ठी, देवी और वेश्या आदि विभिन्न पात्रोंका विविध रूपों को उनके अंग - संगठन, रूपरंग, शील, स्वभाव, जीवन की प्रवृत्ति और प्रकृति की पृष्ठभूमि पर उजागर किया है। भरतमुनि ने प्रधान रस शृंगार, वीर, बीभत्स तथा रौद्र चार माने है।

दशरूपककार धनंजय ने `वस्तु, नेता, रसस्तेषा भेदक`[४] नाटकके चार तत्व माने है। धनंजय के अनुसार नायक प्रतापशाली, कीर्ति की इच्छा करनेवाला, वेदत्रयी का ज्ञाता और रक्षक, उच्चवंशवाला राजर्षि, दैवी पुरुष होना चाहिए।

विश्वनाथ का कथन है -- नाटककी कथावस्तु रामायण, महाभारत आदि से पाठकोंको पूर्वपरिचित मुखादी पंचसंधियोंने युक्त हो।

इस प्राचीन तत्वों के आधारपर शुरु में हिन्दी के नाटक लिखे गये। भारतेन्दु के काल में कुछ तत्वोंको त्यागकर पाश्चात्य तत्वोंका स्वीकार करने लगे।

पाश्चात्य नाट्याचार्य अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र में नाटक के दो भेद माने है - कामदी और त्रासदी। त्रासदी का विस्तार से विवेचन किया है।

---

१ भरतमुनि - नाट्यशास्त्र - १८ । १०

२ वही वही १९ । २

३ वही वही १९ । १३

४ धनंजय - दशरूपक - प्रथम प्रकाश ।

`प्रत्येक त्रासदी के अनिवार्यत: छह अंग होते हैं, जो उसके सौष्ठव का निर्धारण करते हैं - कथानक, चरित्र चित्रण, पद-रचना, विचार-तत्व, दृश्य-विधान, गीत ।`[१] अरस्तू के समय के नाटककारोंने इन छह तत्वों पर नाट्य रचना की । वैसे ही उनके अनंतर के सभी पाश्चात्य और हिन्दी नाटककारोंने इन छह: तत्वोंका स्वीकार किया है ।

`अगस्त्य` नाटक की शास्त्रीयता --

पं. रामेश्वर दयाल दुबे जी ने भारतीय नाट्यशास्त्र के आवश्यक तत्वों को लेकर तथा पाश्चात्य नाट्य तत्वों को लेकर `अगस्त्य` नाटक की रचना की है ।

भारतीय नाट्यतत्वों के अनुसार `अगस्त्य` की कथावस्तु, पुराण, रामायण तथा महाभारत से ली गयी है । इस नाटक में आधिकारिक कथा - अगस्त्य का सांस्कृतिक अभियान के साथ प्रासंगिक कथा विश्वरथ, कालेयक की है । नाटक का नायक महाप्रतापी, संयमी, उच्चवंश, रक्षक, धीरोदात्त है । उनके पराक्रम के बलपर ही आर्य ऋषि मुनि, जन पद कालेयकोंके अत्याचारों से मुक्त हुए । उन्होंने आर्य संस्कृति का प्रसार एवं प्रचार किया । नायक के जो गुण शास्त्रकारोंने बताएँ है वे सारे गुण अगस्त्य में मौजुद है ।

`अगस्त्य` नाटक की वस्तु का विकास भरत के बताए हुए कार्यावस्थाओं, अर्थ प्रकृतियों और संधियों के अनुरूप किया है । नाट्य का प्रारंभ कालेयकों के अत्याचार के वार्तासे होता है ये अत्याचार दूर करने के लिए प्रयत्न, यह प्रयत्न सफल हो जाता है । कालेयकों पर विजय प्राप्ति अंतिम फलागम याने आर्य ऋषिमुनि, आर्य जनपद संकटमुक्त बन जाते है ।

नाटक में भरत मुनि ने बताए हुए प्रधान रस, शृंगार, वीर, बीभत्स, रौद्र चार रसोंका सुन्दर परिपाक हुआ है । अगस्त्य और लोपामुद्रा के प्रेम-पूर्वक संवाद में[२] शृंगार रस प्रतीत होता है । कालेयक ऋषियों के फाडकर खाते थे

१ डॉ. नगेन्द्र - अरस्तू का काव्यशास्त्र - पृ.६५ ।

२ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.२१ ।

और पृथ्वीपर हड्डियोंका आच्छादन रह जाता है। इससेबिभित्स रस का परिपाक हुआ है। चित्रसेना, मणिमद्र तथा अन्य नाविकोंके कालेयकों के साथ युध्द से वीर रस का और रौद्र रसका भी परिपाक हुआ है।

भारतीय नाट्यशास्त्र के कुछ तत्वोंका दुबे जी ने त्याग किया है। नाटक में मंगलाचरण नांदी, सुत्रधार नहीं है। अंकावतार, चुलिका, आदि का प्रयोग नहीं किया है। संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रारंभ में मंगलाचरण होता है। नांदीकेबाद में सुत्रधार के द्वारा नाटक के कथानककी पूर्व सूचना, कथा के बीच बीचमें विष्कम्भक होता है। ' अगस्त्य ' नाटक में कथावस्तु पर बल दिया गया है। वैसे ही प्रमुख चरित्रों का प्रभावशाली चित्रण किया है। इसका नायक ' अगस्त्य ' प्रतापशाली, सुसंस्कृत, चरित्र संपन्न है। उनका पतन या विनाश भी नहीं है। कार्यान्विती पर विशेष ध्यान नहीं दिया है।

अरस्तू ने नाटक में वस्तुको चरित्र चित्रण से भी अधिक महत्व दिया है। चरित्र चित्रण के बिना शायद नाटक बन सकता है किन्तु वस्तु के बिना नाटक की रचना नहीं होती। अरस्तु ने कार्यान्विती पर बहुत बल दिया है।[१]

नाटक का अंत अरस्तू के अनुसार दु:खांत नहीं है। नाटक का अंत इससे भिन्न है। याने सुखांत है, सुखांत में विराग है। नाटक में दिखाया गया है कि अगस्त्य मुनि अपना अंतिम उद्देश्य प्राप्त करते है, कालेयकों से लोगोंको मुक्त करते है या स्वस्थ करते है। प्रसाद के नाटकोंका अंत जिसप्रकार प्रसादांत होता है। उसीप्रकार नाटक प्रसादांत है। केवल मनोरंजनके लिए यह नाटक बिल्कुल नहीं है। ' प्रसाद के नाटक न दु:खांत है न सुखांत है। वे प्रसादान्त है। उनके नाटकों का अंत एक ऐसी वैराग्यपूर्ण भावना से होता है कि जिसमें नायक की विजय तो हो जाती है, किन्तु वह स्वयं उपभोक्ता न बनकर प्रतिनायक को ही लौटा देता है। इस प्रकार के विचित्र अंतकों प्रसादांत की संज्ञा दी गई है।[२]

---

१ गोविंद त्रिगुणायत - शास्त्रीय समीक्षा के सिध्दांत - पृ.२२३।

२ डॉ.शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - पृ.५५३।

` अगस्त्य` नाटक में सिर्फ चार अंक हैं -- अरूणोदय,दक्षिणा पथ, सन्धि विच्छेद, सागर विजय । ` नाटक ` पांच अंक से दस अंक तक का हो सकता है । प्रत्येक अंक का नायक के सम्बन्धित होना भी आवश्यक है । `[१]

नाटक में रंगमंच पर लोपामुद्रा की मृत्यु का दृश्य है । जो संस्कृत नाट्याचार्यों ने वर्जित माना है । ` दूर का मार्ग,पध ,युध्द,स्नान ,भोजन, अनुलेपन, घेरा डालना,वस्त्र ग्रहण आदि वर्जित माने है ।`[२] नाटक में काव्यात्मकता,अभिनेयता, मंचीयता की भाषा शैली आदि पाश्चात्य वस्त्रोंका उपयोग ।

---

१ गोविन्द त्रिगुणायत - शास्त्रीय समीक्षा के सिध्दांत । पृ.२३३

२ वही वही पृ.२३४ ।

(१०) नाटक की भाषा

नाटक मानव जीवन का अनुकरण मात्र है। नाटक भाषा के माध्यमसे ही रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है। भाषा में अनुकरण और अभिनय दोनों रहते हैं। भाषा में पात्र की आत्म-चेतना भी जागृत रहती है।

संस्कृत नाट्यशास्त्र में भरत ने पात्रों की प्रवृत्ति के अनुरूप भाषा के प्रयोग के सिध्दांत की स्थापना की है। 'उच्च वर्ग के पात्र प्राय: संस्कृत भाषा और निम्न वर्गीय पात्र तथा सभी नारी पात्रों को प्राकृत भाषा का प्रयोग करना चाहिए।' [१]

धनंजय ने वृत्तियोंके संदर्भ में भाषा प्रयोग की ओर संकेत मात्र किया है। 'भारती वृत्ति ऐसी वाणी व्यापार को कहते है, जिसका प्रयोग पुरूष पात्रों को करना चाहिए। इसमें संस्कृत भाषा का प्रयोग वांछित है।' [२]

विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण' में पात्रानुसार भाषा का विभाग किया है। उसके अनुसार उत्तम, मध्यम पुरूष पात्रों को संस्कृत और उत्तम मध्यम स्त्री पात्रों को शैारसेनी बोलनी चाहिए। कुछ अन्य आचार्योंके अनुसार रानी, मंत्री की पुत्रियाँ और वैश्याएँ भी संस्कृत बोल सकती है।' [३]

पश्चिमी नाट्यशास्त्र में अरस्तु ने ट्रेजेडी में भाषा प्रयोग सम्बन्ध में लिखा है, कि त्रासदी किसी गंभीर, स्वत:पूर्ण तथा निश्चित आयामसे युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है, जिसका माध्यम नाटक के भिन्न भिन्न भागोंमें भिन्न भिन्न रूपसे प्रयुक्त, सभी प्रकारके आभूषणों से अलंकृत भाषा होती है।' [४]

---

१ भरत - नाट्यशास्त्र - १७। २९। ३९।

२ धनंजय - दशरूपक - ३। ५।

३ देवर्षि सनाढय - हिन्दी के पौराणिक नाटक - पृ.३२२।

४ डॉ. नगेन्द्र - अरस्तुका काव्यशास्त्र - पृ.१९।

गोविंद चातकका नाटक के भाषा सम्बन्धी मत इस प्रकार है, ` वस्तुत: नाटक की भाषा जीवन की भाषा है, जिसके साथ मानव मन की भावमयी अनुभूतियाँ, मुद्राएँ, क्रियाएँ और स्थितियाँ सदा जुडी होती हैं। ` [1]

नाटक की भाषा में सहजता, स्वाभाविकता, का होना आवश्यक है। नाटक की भाषा संवाद की भाषा रहती है। ` संवाद की भाषा जीवित और व्यक्तिगत होती है। संवाद में वाद ( विचारोंका आदान - प्रदान ) होता ही है और यह वाद पात्रोंके बीच होता है। ` [2] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नाटक की भाषा मात्र भाषा नहीं होती, वह पात्र की आत्मपरक भाषा होती है, जिसकी अपनी अलग पहचान रहती है।

हिन्दी नाट्य साहित्य में भारतेन्दु युग से नाटक में गद्य भाषा का प्रयोग होने लगा। भारतेन्दु ने गद्य के लिए खडीबोली का और पद्य के लिए ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। प्रसाद युग में भाषा में प्रौढता, साहित्यिक सौष्ठव दृष्टिगोचर होता है। उनके नाटकों में जनभाषा का अभाव दिखाई देता है। ` पात्रों की संस्कृति के अनुसार उनके भावों और विचारों में तारतम्य होना भाषाओं के परिवर्तन से अधिक उपयुक्त होगा। देश और काल के अनुसार भी सांस्कृति दृष्टि से भाषा में पूर्ण अभिव्यक्ति होनी चाहिए। ` [3] जयशंकर प्रसाद ने नाटक में परिमार्जित भाषा के प्रयोग पर बल दिया है तथा विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं के समावेश का स्पष्टत: निषेध किया है। पात्रों के भावों के अनुरूप भाषा में सहजता एवं गांभीर्य का समावेश होना आवश्यक है। किन्तु डॉ. निर्मल हेमंत जी के भाषा सम्बन्धी विचार भिन्न है। वे कहते है, ` समाज में विविध वर्ग के व्यक्ति विविध भाषाओं का प्रयोग करते हैं और स्वाभाविकता के नाते हमें उनकी भाषा का प्रयोग नाटक में करना चाहिए।

---

१ गोविंद चातक - नाट्यभाषा - पृ.११।

२ राजमल बोरा - हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ.५४।

३ जयशंकर प्रसाद - काव्य और कला तथा अन्य निबंध - पृ.१०९।

जहाँ ऐतिहासिक या प्राचीन पात्र ही उनकी भाषा में आवश्यकतानुसार सत्समता रखी जा सकती है।`[१]

नाटक एक दृश्यकाव्य है और उसकी भाषा, दृश्यविधान, अभिनय, गति तथा अन्य रंगीन तत्वों से भी जुड़ी है। नाटक की भाषा मंच पर संवाद के रूप में बोलने के लिए लिखी जाती है। नाट्यभाषा से नाटक के कथावस्तु का देश काल का स्पष्ट चित्र दृष्टिगोचर होता है।

` अगस्त्य ` नाटक की भाषा --

पं. रामेश्वर दयाल दुबे कृत ` अगस्त्य ` नाटक पौराणिक नाटक है। महर्षि अगस्त्य का महिमामयी चरित्र चित्रण, तथा आर्य - अनार्यों का संघर्ष इसमें है। नाटक के सुसंस्कृत पात्र आर्य तथा असंस्कृत पात्र अनार्य परिष्कृत भाषा में वार्तालाप करते हैं। जो अस्वाभाविक और कृत्रिम लगता है। किन्तु जयशंकर प्रसाद के नाटकों जैसी परिमार्जित भाषा का प्रयोग इस नाटक में सर्वत्र दिखाई देता है।

१- भाषा की सरलता, रोचकता, सुबोधता --

` अगस्त्य ` नाटक की भाषा सरल, स्वाभाविक है। भाषा की सुबोधता के कारण नाटक देखते समय सामाजिक की भाषा सम्बन्धी कोई कठिनाई नहीं आती है। ` अब संध्योपासनाकी तैयारी शीघ्र कर दो। आर्यपुत्र स्नान करके आ ही रहे होंगे। इस बच्चे को इधर दो। इसे देखकर तुम भी स्वयं बच्चा बन जाता है। `[२]

२ - प्रवाह-मयता --

नाटक की भाषा में रोचकता के लिए वह प्रवाहमयी होनी चाहिए।

---

१ डॉ. निर्मला हेमंत - आ. हिन्दी नाट्यकारों के नाट्य सिध्दांत - पृ. २५१।

२ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ. ४९।

प्रवाहमयता में कथाको आगे बढाना, स्वभाव चित्रण,संघर्ष भी गिनाया जा सकता है। ` इस क्षेत्र के क्षेत्रप शम्बर को परास्त करने में, शत शरद जिओ, सोमक। तुम आर्य श्रेष्ठ विश्वरथ के विशेष सहायक सिध्द हुए हो।` [१]
` आपका कथन मान भी लूँ,तो इसका उपाय ` [२]

३ - <u>व्यंग्यात्मकता</u> --

` अगस्त्य` नाटक में भाषा परिमार्जित,संस्कृत शब्दोंसे युक्त है,फिर भी भाषा कलापूर्ण है। उसमें व्यंग्य का चमत्कार है। ` सभी नारियाँ पहले मनचाहा पुरूष चाहती है, और फिर मनचाही वस्तुएँ। [३] ` जितनी सुन्दर और पावन यह प्रकृति है,उतना ही सुन्दर और पावन यदि मानव होता तो स्वर्ग धराका चरणामृत लेता। तोलक कहाँ गया ? ` [४]

४ - <u>पात्रानुकूलता</u> --

पात्रानुकूल भाषा प्रयोग नाटकमें न के बराबर है किन्तु पात्रोंकी मनोदशा के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है। ` देव। देव। मेरे आराध्य वरूण। मैं यह सब क्या देख-सुन रहा हूँ। मेरे लिए यह असह्य है। वरूण देव। जलपति। समुद्र के शासक। आओ, आओ अपने पुत्र अगस्त्य को अवलम्ब दो।` [५] ` आप यह क्या कह रहे हैं ? क्या कह रहे हैं आप ? आज आपको क्या हो गया है ? इतना क्रूर परिहास तो न कीजिए। अपनी लोपा पर ,अपनी प्राणवल्लभा पर विश्वास..... ` [६]

१	पं.रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य -		पृ.५१।
२	वही	वही	पृ.५४।
३	वही	वही	पृ.७५।
४	वही	वही	पृ.८२।
५	वही	वही	पृ.३६।
६	वही	वही	पृ.८४।

५ - संक्षिप्तता --

भाषा में प्रभावगरिमा के लिए संक्षिप्तता ,मर्मस्पर्शिता अपेक्षित है । ` संलापों में छोटे छोटे वाक्य तथा सरल सुबोध शब्द होने चाहिए, जिससे उन्हें कहनेमें वक्ता की सांस न टूटे और सुविधाजनक मुँह से निकल आएँ । ` [१]
` गुरुदेव । लोपा देवी कहाँ । यह जल का छींटा तो मैंने मारा है । मैंने मारा है ।' तो लोपा चली गई - सदाके लिए चली गई । लोपा ! मेरी लोपा !। ` [२]

६ - स्पष्टता --

स्पष्टता भाषाका अलंकार है । नाटक में देशी भाषा का या ऊर्दू तथा अरबी शब्दोंका कहीं भी प्रयोग नहीं किया है । दार्शनिक मीमांसा करनेपर भी भाषा क्लिष्ट या अस्पष्ट नहीं बन पायी है । ` मानवों की अनन्त कलह का मूल इस बात में ही है कि वह प्राय: किसी वस्तु या घटना को केवल अपनी ही दृष्टि से देखता है और सबसे बडी विभ्रान्ति तो यह है कि वह अपने ही दृष्टिकोणको ठीक समझता है । यही अहम् सारे हिंसा तांडवों का मूल है । ` [३]

७ - सूक्तिमयता --

नाटक में सूक्तिमय वाक्योंकी प्रचुरता से भाषा और गरिमामयी बनी है । ` वंचक किसी दूसरे से उतना नहीं ठगता ,जितना स्वयं को ठगता है । ` [४]
` हृदय मानव की सबसे प्यारी सम्पत्ति है । ` [५] गति ही जीवन है । गति रुकी कि दुर्गतिने स्थान लिया । ` [६]

---

१ निर्मल हेमंत - आ.हिन्दी नाट्यकारोंके नाट्य सिध्दांत - पृ.४०८ ।
२ पं.रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.८५ ।
३ वही वही पृ.५२ ।
४ वही वही पृ.७५ ।
५ वही वही पृ.२३ ।
६ वही वही पृ.४२ ।

८ - तत्व चिंतनात्मक वाक्य --

नाटक में दार्शनिक मीमांसा होने के कारण तत्वचिंतनपर वाक्य बीच बीच आये हैं। जिससे दर्शक नीरसता से बचकर चमत्कृत हो जाते है। `किन्तु मैं तो उन्हें केवल दो हृदय मानती हूँ, जो भिन्न होकर भी अभिन्न हो रहे हैं। भेदसे अभेद की ओर, भिन्नतासे अभिन्नता की ओर जाना ही तो संस्कृति है।`[१]
`अभिमान ही तो भगवान का भोजन है। विनम्रता पर ही उसका वरद हस्त छाया करता है। अभिमान के लिए उसका वरद कर कराल काल बन जाता है।`[२]

९ - गीत - योजना --

नाटक में दो गीतोंकी योजना की हैं। `तुम स्वर देते चलो, गीतमें मेरी वाणी बोले।`[३] यह गीत लोपामुद्रा महर्षि अगस्त्य की उद्विग्नता दूर होने के बाद हर्ष से पुलकित होकर गाती है। दूसरा गीत मुनिकन्या प्रसन्न होकर गाती है। गीत नाविक कालेयकोंपर विजय प्राप्ति के बाद और नाटक के अंत में है। `विजय को करते चले वरण।`[४] दोनों गीत पात्रगत विशेषताओं से युक्त हैं। इसमें काव्यगुण के साथ साथ कलाकी सुकुमारता पाई जाती है।

१० - संस्कृत शब्द योजना --

भाषा अत्यंत परिष्कृत है, साथ में संस्कृत शब्दोंका प्रयोग किया है - जैसे -- अमर्ष[५], उपत्यकाएँ[६], परिव्राजक[७], प्राचीरे, प्रागंण, इत्यादि जिससे भाषा में गरिमामयी और प्रौढता बढ गयी है।

---

१ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.३९।
२ वही वही पृ.६१।
३ वही वही पृ.४६।
४ वही वही पृ.११६।
५ वही वही पृ.४५।
६ वही वही पृ.६१।

११) मंचीयता --

नाटक जब अपने प्रदर्शन द्वारा मूर्त रूप पाता है तो उसे रंगमंच कहते हैं। यद्यपि इस शब्द का पारंपारिक अर्थ वह स्थान या मंडप जहाँ नाटक खेले जाते हैं। ` मंच ` शब्द का अर्थ ` सभा समितियों में ऊँचा बना हुआ मंडल, जिसपर बैठकर सर्वसाधारण के सामने किसी प्रकार का कार्य किया जाएँ। `[१]

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में रंगमंच नाट्य गृहों पर विस्तृत विवेचन किया है। नाट्यगृह तीन प्रकार के होते है -- विकृष्ट, चतुरस्त्र और त्र्यस्थ। ये तीनों प्रकार के नाटयगृह तीन तीन परिमाण के होते थे -- ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ। इन सभी प्रकार के नाटयगृहों में विकृष्ट मध्यम प्रकार के मानव के लिए अधिक उपयोगी माना गया है। यह नाटयगृह चौसठ हाथ लम्बा और बत्तीस हाथ चौडा होता है। इसका आधा भाग प्रेक्षागृह याने दर्शकों के बैठने का स्थल होता था, तो दूसरा आधा भाग अभिनय स्थल याने रंगमंच था।[२] आगे चलकर रंगपीठ और मत्तवारणी के बारेमें बताया है --` रंगपीठ के पार्श्व में मत्तवारणी का निर्माण होना चाहिए। मत्तवारणी चार स्तंभों से युक्त रंग पीठ के बराबर माप की होनी चाहिए। यह मत्तवारणी ऊँचाई में डेढ होनी चाहिए। रंगशीर्ष षड्दारूक के ढाँचे पर भली प्रकार आधारित होना चाहिए और नेपथ्य गृह के दो द्वार रखने चाहिए।`[३]

हिन्दी में रंगपीठ`, ` रंगशीर्ष`, ` रंगमंडप` आदि शब्दों से नाट्यमंडल अथवा रंगभूमि का पूर्ण अर्थ स्पष्ट न होने से नये शब्द की आवश्यक्ता ---- हुई, यह आवश्यक्ता ` रंगमंच ` शब्द ने पूरी कर दी।

नाटक और रंगमंच का अन्योन्याश्रय संबंध है। रंगमंच के बिना नाटक की सफलता एवं सार्थकता व्यर्थ है। नाटक रंगमंच से जुडा है। हर नाटक का अपना

---

१ मानक हिन्दी कोश - खण्ड ४ - पृ.२५४।

२ भरतमुनि - नाट्यशास्त्र - अध्याय दूसरा - पृ.७०-७९।

३ वही वही वही पृ.७०-७९।

एक मंच होता है। यह मंच युग के साथ बदलता रहता है। ` युग अपनी समृध्दि और विकास रुचि, आकांक्षा, लोक प्रवृत्ति और प्रयोग प्रतीक के अनुकूल मंच प्रस्तुत करता है। ` [१]

आधुनिक युग के रंगमंच के बारे में निशांत केतु लिखते हैं --` रंगमंच के मुख्यता चार प्रभाग होते हैं - पहला नेपथ्य या सज्जागृह - जहाँ पात्र अपने चरित्रों के अनुरूप सज्जित होते हैं, दूसरे पार्श्व या पक्ष, तीसरे दृश्य - सामग्री जैसे कुर्सी मेज, पर्दा इत्यादि और चौथे मंच का अग्रभाग जो रंगमंच को दर्शक दीर्घा से पृथक करता है। रंगमंच और प्रेक्षा गृह के सम्मिलित स्थल को रंगशाला या नाट्यशाला कहते हैं। [२]

आधुनिक रंगमंच आकार प्रकार की दृष्टि से अनेक प्रकार के बनते है। रंगशाला के रंगमंच, खुले मैदान के रंगमंच, ड्राइंग रूम के रंगमंच, और रेडिओ रंगमंच आदि विविध प्रकार के होते हैं। कुछ आधुनिक रंगमंच बहुत विशाल बनाएँ जाते हैं। ` रंगमंच में दर्शकों की संख्या सैंकडों में होती है तथा मंचपर ही कार, घुडसवार, बारात, जुलूस आदिका प्रदर्शन सरलता एवं सुगमता से हो सकता है। ` [३] नाटक की कसौटी रंगमंच है और रंगमंच का मूल्यांकन प्रेक्षागृह में होता है। इसीलिए प्रेक्षाकोंकी रुचि के अनुसार रंगमंच के आकार प्रकार में परिवर्तन आ गया है।

नाट्यशाला का आकार प्रकार चाहे जैसा भी हो, उसमें तीन विभाग आवश्यक है - नेपथ्य, रंगमंच और प्रेक्षागृह। नेपथ्य में नाटक की रंगमंच पर प्रस्तुति के लिए तैयारियाँ होती है - जैसे - रंगभूषा - वेशभूषा, संगीत योजना, प्रकाश योजना आदि। नेपथ्य के बिना रंगमंच सुशोभित नही हो पाता। नेपथ्य कार्य की पूर्णता रंगमंच होती है।

१) <u>दृश्य सज्जा</u> -

नाटक, अभिनय और दृश्य में पारस्परिक संगति आवश्यक है। जैसा नाटक

---

१ निशांत केतु - नाटक और मंच - पृ.२२।

२ वही वही पृ.४९।

३ अवधेश चंद्रगुप्त - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - चार तत्व - पृ.३१५।

की प्रकृति के अनुसार रंगमंच की दृश्यसज्जा होनी चाहिए । दृश्यसज्जा नाटक की पृष्ठ भूमि है, जिसके बीच से अभिनेता अभिनय द्वारा नाटक या प्रदर्शन करता है । ` प्रसंगानुकूल स्वाभाविक दृश्य योजना से नाटक वे समग्र प्रभाव में वृध्दि होती है ।`[1] नाटक में दृश्य योजना की स्थिरता आवश्यक होती है । नाटक में कम दृश्य बंध होने चाहिए । ` दृश्य योजना या तो भावात्मक वातावरण से निर्मित होता है या अभिनय, मुद्राओं और प्रकाश तथा अंधकार` द्वारा निर्मित चित्रों से ।[2]

२) <u>रंगभूषा</u> --

नाटक में पात्रों की वेशभूषा, आकृति अवस्था आदि का भी विशेष महत्व होता है, अत: ये सब देश एवं काल के अनुरूप होनी चाहिए । दर्शकों के सामने अभिनेता को अभिनेता नहीं अपितु पात्र बनकर उपस्थित करना होता है । अत: रंगभूषा या रूप सज्जा से विभूषित होकर - रंगमंचपर उतरना होता है । यह रूपसज्जा के दो प्रकार हैं । पहला है वेशभूषा, दूसरा मुख, चेहरे का रंग, कृत्रिम केश, दाढी मूँछें, हनुमान बनना है तो दुम आदि सब इस सजावट में सम्मिलित है । वेशभूषा के अंतर्गत पात्रों की वस्त्र सज्जा तथा उनके अलंकरण से संबंधित रंग कार्य आते हैं । ` मान लीजीए कोई वैदिक युग से सम्बन्धित कथानक के नाटक का अभिनेय किया जाता है और उस नाटक के पात्रों को सूट - बूट आदि आधुनिक परिधान पहना दिए जाएँ, तो नाटक की अभिनेयता सफल नहीं होगी ।`[3] वेशभूषा के बारे में जगदीशचंद्र माथुर के विचार है -- ' यह सत्य है कि अभिनय कितना ही उत्कृष्ट क्यों न हो उचित वेशभूषा के अभाव में उससे वांछित प्रभाव की सृष्टि नहीं की जा सकती ।`[4]

नाटककार का जितना संबंध रंगमंच से है उतना ही नाटक के पात्रों से, पात्रोंकी अवस्था, मुखाकृति, शरीर और वेशभूषा से है ।

---

१ डॉ. निर्मला हेमंत - आधुनिक हिन्दी नाटकों के नाट्य सिध्दांत -पृ.२९९ ।

२ नरनारायणराय - कोणार्क रंग और संवेदना - पृ.६९ ।

३ गोविंद त्रिगुणायन - शास्त्रीय समीक्षा के सिध्दान्त - पृ.२३१ ।

४ जगदीशचंद्र माथुर - भोर का तारा - परिशिष्ठ - पृ.१५४ ।

३) प्रकाश योजना --

आधुनिक युग में रंगमंचपर कृत्रिम प्रकाश योजना का तत्व परमावश्यक बन गया है । रंगमंच पर प्रकाश योजना करने के लिए प्रशिक्षित तंत्रज्ञ की आवश्यकता रहती है । प्रकाश के माध्यम से वातावरण की निर्मिति होती है । रंगीत प्रकाश योजना नाटक को प्रभावशाली बनाती है । नाटक के प्रतीकात्मक अथवा सांकेतिक अर्थ प्रकाश के रंगोंद्वारा स्पष्ट हो जाते हैं । " समाज में रंगों के प्रचलित अर्थ है, रंगों की अपनी भाषा है, जैसे शुभ्र प्रकाश पवित्रता, सुख का प्रतीक है । अंधकार दु:ख, पाप, दुष्ट वृत्तियोंका प्रतीक है । गुलाबी प्रेम का, लाल खून का ।"[१]

रंगीत प्रकाश योजना, न्यूनाधिक प्रकाश करने की व्यवस्था, घूमती प्रकाश योजना इस प्रकाश व्यवस्था के कारण रंगमंच को नयी चेतना मिली है ।

४) संगीत योजना --

नाटक को स्वाभाविक रूपमें आकर्षक बनाने में ध्वनि संगीत का महत्वपूर्ण योगदान है । आधुनिक रंगमंच पर पार्श्वसंगीत की योजना रंगमंच की कला के रूप में विभाजित हुई है । रंगमंचपर संगीत ध्वनियों की योजना व्यापक और महत्वपूर्ण हो गयी है । संगीत योजना से विशिष्ट वातावरण की सृष्टि की जाती है । " ध्वनि प्रभावों की सार्थकता दृश्य साधनों के अभाव की पूर्ति तथा आंगिक एवं सात्त्विक अभिनय का आभास देने में है ।"[२]

आजकल नाटकों में पांच प्रकार की संगीत योजना की जाती है ।"[३]

१. गीतों के साथ वाद्य योजना के रूप में
२. विशिष्ट रसोंके अनुकूल नेपथ्य से उसका रस का प्रभाव देनेवाली वाद्य ध्वनि के रूप में करुण, भयानक दृश्यों में

---

१ राजमल बोरा - हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ.८९ ।
२ डॉ. निर्मला हेमंत - आ. हिन्दी नाटयकारों के नाटय सिध्दान्त - पृ.४११ ।
३ राजमल बोरा - हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ.८९ ।

३. रंगमंच पर घटित घटनानुसार नेपथ्य से वाद्य ध्वनि जैसे - घण्टा, शंख, नगाडे।

४. रंगमंच पर उपस्थित पात्रों की मनोदशा के अनुकूल नेपथ्य गीत

५. प्रत्यक्ष रंगमंचपर गाये जानेवाले गीत. ।

रंगमंच पर घटित कथानक के अनुकूल ही संगीत योजना होनी चाहिए। संगीत की अपनी भाषा है, अपने संकेत है।

५) कथावस्तु --

कथावस्तु नाटक का अपरिहार्य अंग है। नाटक की धुरी है। जिससे घटनाएँ, पात्र, संवाद, रंगशिल्प आदि तत्वशक्ति एवं रूपाकार प्राप्त करते है। डॉ. हेमंत कहती है -- कथावस्तु नाटक का वह मूलाधार है जहाँ से नाटक का सारा विकास, उसकी सारी परिणती और संभावनाएँ अपने लिए ठोस भूमि पाती है।[१] नाटक की कथावस्तु घटनाओंका समुच्चय नहीं है। उसमें घटनाओं की शृंखला बध्दता, नाटकीयता, का होना अपरिहार्य है।

आधुनिक कालके नाटकोंकी कथावस्तु में कुतुहल संघर्ष तथा चरमसीमा आवश्यक रचना तत्व माना जाता है, तथा चरमसीमामें संघर्ष पर बल दिया जाता है।

६) पात्र --

नाटक में चरित्र चित्रण का असाधारण महत्व है। किन्तु उसके विकास और प्रकार की संभावनाएँ सीमित होती है। नाटककार को निरंतर इन सीमाओं का खयाल रखना पडना पडता है।

" पात्र नाटकीय वस्तुकी प्रेषणीयता में सहायक होते है। इसलिए पात्र भी नाटक का अनिवार्य अंग है। पात्रों का अतिवादी और अतिरंजित चित्रण निर्मलाजीको स्वीकार्य नहीं है। "[२]

---

१ निर्मला हेमंत - आधुनिक हिन्दी नाटयकारों के नाट्य सिध्दान्त-पृ.४४२।

२ वही वही पृ.३९०।

` अगस्त्य` नाटककी ` मंचीयता `

नाटककी सफलता रंगमंचपर प्रस्तुत होने में है। जो नाटक रंगमंचपर खेला नहीं जाता, उसे नाटक नहीं कहा जा सकता है। नाटक की सफलतासे खेलने के लिए नाटककार को रंगमंच का ध्यान रखना पड़ता है। रंगमंच पर जब नाटक खेला जाता है, तब नाटक की कथा, पात्र, कथाका भाव, मंचीय दृश्य, प्रकाश, संगीत - रंगभूषा, वेशभूषा आदि सारे अंग एक दूसरे में घुलमिल जाते है और उसका रसास्वादन दर्शक करते हैं।

कथावस्तु --

रंगमंच की दृष्टि से एक सफल नाटक में जो विशेषताएँ होनी चाहिए, वे अगस्त्य नाटक में विद्यमान हैं। इस पौराणिक नाटक का कथानक अत्यंत संक्षिप्त तथा सुलझा हुआ है। जो सामान्य दर्शन आसानीसे समझ पाते है। ` अगस्त्य ` नाटक में महर्षि अगस्त्य का सांस्कृतिक अभियान उत्तर से दक्षिणमें ले जाने के घटना से अन्य घटनाएँ विश्वरथ का पराक्रम, कालेयकोंका अत्याचार, समुद्रपर विजय ईर्दगिर्द घूमती रहती हैं।

दृश्यबंध --

नाटक चार अंकोंमें विभाजित किया गया है। प्रथम अंक ` अरूणोदय ` में तीन दृश्य बंध हैं। द्वितीय अंक `दक्षिणापथ` में दो दृश्यविधान हैं। तृतीय अंक ` सन्धि-विच्छेद` में दो दृश्यबंध अगस्त्य का आश्रम और वेगवती नदी का तट। चतुर्थ अंक ` सागर विजय ` में भी दो ही दृश्यबंध है। पहला दृश्यबंध मलय पर्वत और दूसरा समुद्र का किनारा।

नाटक पौराणिक परिवेश से जुडा है। मंचसज्जा के बारेमें पूरा विवरण नहीं मिलता है। स्थूल निर्देश कई जगह कोष्टक में मिलते है। ` आश्रम के निकट पहुंचकर दशार्णी नदी दक्षिण दिशामें मुड गई है। एक ओर ऊँचे कगार, दूसरी ओर विस्तृत रेतीका चटान नदीके पात्र में यत्र तत्र उभरी उभी चिकनी चट्टाने हैं। बालुका के बीच में उभरी हुई चट्टाने उच्चासन की प्रतीत होती है।[१]

१ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ. २१।

रंगभूषा --

पौराणिक नाटक होने के कारण रंगभूषा को प्राधान्य प्राप्त हुआ है। वातावरण की निर्मिति तथा स्वाभाविकताके लिए यह तत्व सहाय्यभूत होता है। पात्रों के रूपसज्जा और रंगभूषा के बारेमें संकेत दिये है। जैसे -- प्रथम अंक प्रथम दृश्य - रंगनिर्देश दिया है - वर्ण गौर ,शरीर ऊँचा पूरा, भरा हुआ,नेत्र और नासिका दोनों प्रभावशाली। नीचे के अंगपर अधोवस्त्र धारण किए हुए है। दाहिने कन्धेपर उसी प्रकारका उत्तरीय है। बाँए कन्धेपर मोटे सुटका यज्ञोपवीत सुशोभित है।' [१]

'अगस्त्य' नाटक पौराणिक होने के कारन नाटककारने वेशभूषा तथा रंगभूषा पर विशेष ध्यान दिया है।

प्रकाश योजना --

नाटककार पं.दुबेजी ने प्रकाश योजना के बारे में स्पष्टतासे निर्देश नहीं किया हैं। नाटक के प्रत्येक दृश्य में किसी विशिष्ठ समय की सूचना दी गयी है। जो प्रकाश योजना करते समय सहायक बन सकते हैं। जैसे प्रथम अंक में प्रथम दृश्य में समय - संध्याकाळ[२] इस अंक में द्वितीय दृश्य - रात्रिका प्रथम प्रहर' [३] प्रथम अंक - तृतीय दृश्य - समय- रात्रिके द्वितीय प्रहरका प्रारंभ (चारों ओर हल्का अन्धःकार है। कगार और वृक्षोंकी अस्पष्ट आकृतियाँ मात्र दिखाई देती है। [४]

संगीत --

पं.दुबेजी मूलत: कवि हृदय के नाटककार हैं। उन्होंने गीतों की योजना नाटकमें सफलतासे की है, जिसमें पात्रोंकी मनोदशाओंका चारित्रिक

---

१ पं.रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.२१।

२ वही वही पृ.२१।

३ वही वही पृ.२९।

४ वही वही पृ.३७।

विशेषताओंका संकेत किया है। महर्षि अगस्त्य की निराशा दूर करने के लिए लोपामुद्रा गाती है ---' तुम स्वर देते चलो गीत में
मेरी वाणी बोले।'[1]

कालेयकों पर विजय प्राप्ति का आनन्द व्यक्त करने के लिए मुनिकन्या प्रसन्न होकर गाती है। नेपथ्य संगीत का निर्देश कहीं भी नहीं किया है।

ध्वनि योजना --

नाटक में ध्वनियोजना के बारेमें संकेत न के बराबर है। केवल दृश्य संकेत - तथा प्रकाश योजना के आधारपर वातावरण निर्मिति के लिए ध्वनिका प्रयोग निर्देशक कर सकता है।

अभिनेयता --

नाटककारने लम्बे-चौडे रंग निर्देश नहीं दिए है। ऐसे नाटकों में निर्देशक के लिए स्वतंत्रता रहती है। पात्र भी अपना स्वाभाविक अभिनय करने के लिए मुक्त रह सकता है। किन्तु जहाँ अभिनेयता के लिए संकेत मिलते है वे पर्याप्त नहीं है -- जैसे (आश्चर्य से)[2] (गंभीर वाणी में)[3]

भाषा -

नाटक की कथावस्तु पौराणिक है, दार्शनिक - - - - विवेचन होने के कारण भाषा प्रौढ, गरिमामयी और मंजी हुई है। संस्कृत शब्दोंका प्रचुर मात्रा में उपयोग किया है। भाषा में पात्रों के मनोवेगोंको व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता है।

---

१ पं. रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.५९।

२ वही वही पृ.२६।

३ वही वही पृ.३७।

पात्र --

पात्र या चरित्र की सृष्टि करने में नाटककार ने पूर्ण सफलता पाई है। इसके साथ पात्रों की संख्या मर्यादित करनेपर पूरा ध्यान दिया है। पात्रों में विविधता है। नाटक संक्षिप्त होने के कारण सभी पात्रों के पूर्ण रूपसे परिचय नहीं हो गया है।

कथोपकथन --

नाटक के संवाद अभिनेय के लिए सहायक है। काव्यात्मक दार्शनिकता के कारण संवाद सुन्दर भावुक बन गये है। कई कई संवाद नाटकीय बन पडे हैं। जैसे जो प्रत्यक्ष है उसके लिए प्रमाण क्या [१]

भारतीय संस्कृति का अर्थ,परिभाषा,अवधारणा आदिपर चिंतनात्मक कथोपकथन गरिमामय,प्रौढ बन गये है।

रंगमंच पर खेले जाने के लिए जो विशेषताएँ आवश्यक हैं वे सारी विशेषताएँ `अगस्त्य` नाटक में मौजुद हैं। अत: संवेदनशील और कुशल निर्देशक के द्वारा ही इस नाटक का सफल मंचीकरण हो सकता है। मंचीयता के दृष्टिसे लोपामुद्रा की मंचपर मृत्यु दिखाना,विश्वरथ के बालक के साथ वृक का खेलना अयोग्य है। किन्तु इन दो दृश्यों में बदल कर सकते है।

---

१ पं.रामेश्वर दयाल दुबे - अगस्त्य - पृ.४२।

उ प सं हा र

आधुनिक काल में हिन्दी नाटक विविध विषयों को लेकर तथा नये प्रकार के तकनीकों के सहारे नाटक प्रस्तुत कर रहा है। वास्तव में पौराणिक या ऐतिहासिक नाटक लिखना या प्रस्तुत करना एक तरह से कौशल्य की बात है, क्योंकि ऐसे नाटकों की रचना करते समय नाटककार को मूल पौराणिक या ऐतिहासिक तथ्य तथा नाट्य शिल्प को एक साथ निभाना पड़ता है। वह न विख्यात कथा में विशेष परिवर्तन कर सकता है, न कल्पना शक्ति को दबाता है। पौराणिक या ऐतिहासिक कथावस्तु का परिचय दर्शकों के लिए होता है। इसलिए उस कथा में यदि कोई परिवर्तन लेखक करना चाहे तो दर्शक उसे तब तक स्वीकार नहीं करते जब तक उसका चित्रण तर्कसंगत न हो पं.रामेश्वरदायल दुबे जी ने अगस्त्य के पौराणिक कथा को नये वैज्ञानिक रूप में इस नाटक द्वारा प्रस्तुत किया है। इस नाटक का एक अनुशीलन करने का प्रयास मैंने किया है।

भूमिका में अंगीकृत कार्य का प्रयोजन एवं औचित्य बताया गया है। इसके अनंतर नाटककार पं.रामेश्वरदायल दुबे जी के व्यक्तित्व और कृतित्व का साधारण परिचय प्रस्तुत किया गया है। नाटक,कविता,कहानी और हास्य जैसा अनेक साहित्य विधाओं में दुबे जी की लेखनी बराबर काम करती रही है। उनकी साहित्य की विशेषता है प्रसाद याने अक्लिष्टता।

दूसरे अध्याय में हिन्दी के पौराणिक नाटकों की रूपरेखा में पौराणिक नाटकों का कथ्य और काल के आधारपर वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। जिससे पूर्ववर्ती नाटक परंपराका परिचय हो।

तीसरे अध्याय में नाटक के शिल्प विधान में भारतीय तथा पाश्चात्य शिल्प का संक्षिप्त परिचय दिया है। इस पृष्ठभूमि पर अगस्त्य नाटक के शिल्पविधि का परिचय दिया है। कथावस्तु में अगस्त्य की महिमामयी कथा के साथ अन्य प्रासंगिक कथाओंका विवेचन किया है।

कथावस्तु के मुलस्त्रोत में पुराण, रामायण, महाभारत में वर्णित कथाओंका परिचय दिया है। पुराण में अगस्त्य कीउत्पत्तिका वर्णन है। रामायण में बताया है कि, सह्याद्रिकी दक्षिण की ओर सर्व प्रथम अगस्त्य ही गये। इसी स्थानपर वातापिको खाकर पचा दिया। महाभारत में विन्ध्यपर्वत के आकाश में ऊपर उठने से सब प्राणी संकट में पड गये। अगस्त्य ने उसे बढनेसे रोका। कालेयक नामक असुर समुद्र में छिपकर रात में ऋषि मुनियों की हत्या करते थे।

पौराणिक चरित्रों के साथ काल्पनिक चरित्रों को कुशलतापूर्वक समेटा है। चरित्रों की भरमार नहीं हैं। प्रमुख पात्रों का ही स्पष्ट और कुशलता पूर्वक चरित्र चित्रण किया है। अन्य पात्रोंका चरित्र चित्रण संक्षेप में है।

नाटक के संभाषण का परिचय देकर 'अगस्त्य' नाटक के संभाषण की चर्चा की है। जो सरल, स्वाभाविक, दार्शनिक चिंतन से गरिमामय बन गये हैं।

देशकाल वातावरण में वेदकालीन रीति, प्रथा, रहन-सहन, का ढंग, पात्रों की वेशभूषा, शिष्टाचार, विचार, चिंतन, भाषाशैली, कथा की पृष्ठभूमि आदि सारी बातों का विवेचन किया है।

नाटक के भाषा का परिचय देकर 'अगस्त्य' नाटक की भाषा का विवेचन किया है।

नाटक की अभिनेयता की चर्चा करने के उपरांत 'अगस्त्य' नाटक की अभिनेयता की चर्चा की है। लोपामुद्रा तथा अगस्त्य में आंतरिक संघर्ष दिखाया है। कालेयकों का आक्रमण एवं संघर्ष भी प्रभावकारी बना है।

काव्यात्मकता में कवि हृदय की सहज भावुकता की पुट दिखायी देता है। नाटक में सुन्दर भाषाशैली, सुंदर उक्तियों का संग्रह है।

नाटक की शास्त्रीयता का विवेचन करते हुए 'अगस्त्य' नाट्य की शास्त्रीयता का परिचय दिया है। इसमें वस्तुनेता, रस के आधार पर नाटक खडा है। तथा पाश्चात्य तत्व कथोपकथन, उद्देश्य, मंचीयता आदि का विवेचन किया है।

उद्देश्य में नाटक के उद्देश्य की, भारतीय तथा पाश्चात्य तत्वों के आधार पर विवेचना करके नाटक का उद्देश्य बताया है, कि धर्म और नीतिका ज्ञान देना और साहित्यिक आनंद प्रदान करना ।

मंचीयता में नाटक की मंचीयता की चर्चा करके 'अगस्त्य' नाटक के मंचीयता में मंचसज्जा, रूप सज्जा, प्रकाश व्यवस्था, संगीत आदि रंगमंच के उपकरणों पर प्रकाश डाला है और नाटक की मंचीयता स्पष्ट की है ।

इस विवेचन के आधार पर 'अगस्त्य' नाटक के अध्ययन में बडी सहायता मिल सकती है । यह दावा नहीं किया जा सकता कि, इन पृष्ठों में किया गया अध्ययन संपूर्ण ही है । यह एक अध्ययन है तथा और विधाओं से भी इसका अध्ययन किया जा सकता है । नाटक का प्रयोजन, नाटककारका दृष्टिकोण समझाने के लिए यह विवेचन मैंने प्रस्तुत किया है ।